पं. दौलतराम कासलीवाल कृत

श्रीपालचरित

सम्पादन

डॉ. वीरसागर जैन

भारतीय ज्ञानपीठ

श्रीपालचरित

हिन्दी-जैन-चरितकाव्य-परम्परा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति। कृतिकार पं. दौलतराम कासलीवाल ने इसमें जैन पुराणों में वर्णित श्रीपाल-मैनासुन्दरी की लोकप्रसिद्ध कथा के माध्यम से शील, संयम आदि श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों का महान सन्देश दिया है।

वस्तु एवं शिल्प—उभय दृष्टियों से समृद्ध यह कृति अद्यावधि अप्रकाशित थी। हिन्दी के साहित्यानुरागी पाठकों के समक्ष यह प्रथम वार प्रकाशित होकर पहुँच रही है। इस दृष्टि से यह पाण्डुलिपि-संरक्षण की दिशा में वढ़ाया गया एक ठोस कदम भी है।

ISBN 81 - 263 - 0913 - X

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : हिन्दी ग्रन्थांक 36

पं. दौलतराम कासलीवाल कृत
श्रीपालचरित

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली-110 032

आवरण : अशोक भौमिक

प्रथम संस्करण : 2003

मूल्य : 40 रु.

© डॉ. वीरसागर जैन

Pt. Daulatram Kasliwal's
SRIPALCHARIT
(Poetry)
Edited by Dr. Veersagar Jain

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

First Edition : 2003

Price : Rs. 40

चारित्रचक्रवर्ती

आचार्य शान्तिसागर मुनिराज को

जिनका 131वाँ जन्मोत्सव

पूरे देश में 'संयमवर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है

सविनय समर्पित

प्राक्कथन

पण्डित दौलतराम कासलीवाल (वि.सं. १७४९ से १८२९ तक) के विशेष अध्ययन का अवसर मुझे अपनी पी-एच. डी. के दौरान मिला, क्योंकि तब मेरा शोध-विषय ही यह था—'पण्डित दौलतराम कासलीवाल और उनका साहित्य'।

पण्डित दौलतराम कासलीवाल हिन्दी-जैन-साहित्य के अतीव समर्थ रचनाकार हैं। उनका साहित्य गुणवत्ता और परिमाण—दोनों ही दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनकी कुल मिलाकर २० कृतियाँ उपलब्ध होती हैं और वे सभी वस्तु एवं शिल्प—दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अपना विशेष स्थान रखती हैं। उनकी कृतियों में १० गद्यात्मक हैं और १० पद्यात्मक। गद्यात्मक कृतियाँ भाषा की दृष्टि से अथवा खड़ी बोली गद्य के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं तो पद्यात्मक कृतियाँ इस अर्थ में विशेष स्तुत्य मानी जाती हैं कि वे रीतिकालीन होकर भी और कवि के राजदरबार से जुड़ा हुआ होने पर भी उस धारा से सर्वथा अलग हैं और उनमें जनकल्याण हेतु भक्ति, नीति व अध्यात्म की पावन धारा प्रवाहित हो रही है।

परन्तु यह बड़े खेद की बात है कि उनकी अधिकांश कृतियाँ अद्यावधि अप्रकाशित हैं। न केवल अप्रकाशित हैं, कतिपय कृतियाँ तो नष्ट होने के ही कगार पर आ चुकी हैं। जहाँ किसी समय उनकी एक रचना की अनेकानेक पाण्डुलिपियाँ मिला करती थीं, अब बड़ी मुश्किल से कहीं कोई एक ही पाण्डुलिपि मिलती है। उदाहरणार्थ प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' को ही ले लीजिए। इसकी जयपुर, उदयपुर आदि स्थानों पर अनेक पाण्डुलिपियाँ होने का उल्लेख मिलता है; परन्तु जब मैं उन्हें खोजने निकला तो मुझे उनमें से एक भी नहीं मिलीं। मात्र एक पाण्डुलिपि श्री भट्टारक यशःकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थ-भण्डार, ऋषभदेव (जिला उदयपुर, राजस्थान) में मिली और मुझे प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन उस इकलौती प्रति के आधार पर ही जैसे-तैसे करना पड़ा; इस भावना से कि कहीं यह भी नष्ट न हो जाए। इसी प्रकार कुछ दिन पहले मैंने कवि की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति 'चतुर-चितारणी' का सम्पादन किया था। मुझे उसकी भी मात्र एक ही पाण्डुलिपि

धर्मपुरा दिल्ली के ग्रन्थ-भण्डार में मिली थी। बहुत खोजने पर भी, उसकी भी अन्य पाण्डुलिपियाँ मुझे नहीं मिल सकी थीं।

इसके अतिरिक्त अब मैं उनकी कृति 'समयसार-कलश-टब्बाटीका' का सम्पादन भी पाठकों को भेंट करना चाहता हूँ, पर लिखते हुए कम्पन हो रहा है कि मुझे उसकी वह इकलौती पाण्डुलिपि भी अब नहीं मिल पा रही है जो लगभग सात-आठ वर्ष पहले तक प्रतापगढ़ के मन्दिर में मिलती थी। पता नहीं कहाँ हो गई है? खूब खोज लिया है, पर नहीं मिल रही है।

कहने का तात्पर्य यही है कि आज हमारी अनेक अनमोल पाण्डुलिपियाँ नष्ट होने के कगार पर खड़ी हैं; अतः हमें उनके सम्पादन-प्रकाशन की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए। प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' का सम्पादन-प्रकाशन मेरा इसी दिशा में उठाया गया एक छोटा कदम है।

दूसरी विशेष बात यह है कि प्रस्तुत कृति जैन कथा-साहित्य की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है और जैन-कथा-साहित्य का विश्व भर के कथा-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है—इसमें कोई सन्देह नहीं; जैसा कि डॉ. हीरालाल जैन ने 'सुगन्धदशमी कथा' की प्रस्तावना में सिद्ध किया है और आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय ने भी 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' पृष्ठ 8 पर स्पष्ट लिखा है—"कहानी लिखने में जैनियों को शायद ही कोई पराजित कर सके। उनके यहाँ इसका एक विशाल भव्य साहित्य है।

प्रस्तुत कृति का प्रकाशन देश के ख्यातिप्राप्त साहित्यिक संस्थान भारतीय ज्ञानपीठ से हो रहा है, अतः मैं उसके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं अपने अनुज शुद्धात्मप्रकाश जैन को भी हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस कृति की प्रथम प्रतिलिपि करके मेरी बहुत सहायता की।

—वीरसागर जैन

प्रस्तावना

कृति का सामान्य परिचय

प्रस्तुत कृति का नाम 'श्रीपालचरित' है। इसकी रचना आज से लगभग २४० वर्ष पूर्व फाल्गुन शुक्ला एकादशी वि. सं. १८२२ को पूर्ण हुई थी।[1] इसमें अंगदेश के महान् राजा कोटिभट श्रीपाल एवं उनकी महारानी महासती मैनासुन्दरी की लोकप्रिय कथा को कवि ने अपनी विशिष्ट शैली में लिखा है, जिसे पूरी तरह तो मूल रचना को पढ़कर ही जाना जा सकता है, परन्तु उसका 'कथा-सार' भी आधुनिक हिन्दी गद्य में मैंने इस कृति के प्रारम्भ में ही दिया है, उसे पढ़कर भी कुछ समझा जा सकता है।

जैन-साहित्य में श्रीपाल और मैनासुन्दरी की कथा बहुत पहले से ही अत्यधिक लोकप्रिय रही है और वर्तमान में भी इस पर कोई-न-कोई कार्य होता ही रहता है। कभी कोई नाटक खेला जाता है तो कभी कोई उपन्यास लिखा जाता है। थोड़े दिन पहले मुम्बई के एक फिल्म निर्देशक ने तो इस पर एक सुन्दर फिल्म भी बनाई थी जिसने देश के सिनेमाघरों में अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज करायी थी।[2]

'श्रीपालचरित' की यह कथा दिगम्बर और श्वेताम्बर—दोनों ही सम्प्रदायों में अत्यधिक प्रसिद्ध है और दोनों में ही इस कथा से सम्बन्धित अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये कृतियाँ यद्यपि अधिकांशतः 'श्रीपालचरित' के नाम से ही उपलब्ध होती हैं परन्तु कुछ प्रतियाँ 'सिद्धचक्र कथा' या 'सिद्धचक्र पूजा' आदि नामों से भी उपलब्ध

---

१. "संवत अष्टादश शत जान, ऊपर बीस दोय फिर आन।
फागुन सुदि इग्यार निस मांहि, कियो समापत उर हुलसाहि ॥"
—श्रीपालचरित, छन्द ७५५

२. इस फिल्म को मैंने स्वयं जयपुर के मानप्रकाश टाकीज में देखा था, पर अबतक उसका कुछ भी विवरण मेरी स्मृति में नहीं था। मित्रवर डॉ. जयकुमार एन. उपाध्ये ने बहुत शोध करके बताया है कि यह फिल्म सन् १९७९ में मनर दर्शन प्रोडक्शन, मुम्बई के बैनर तले श्री विजय शर्मा के निर्देशन में बनी थी और इसके गीतकार व संगीतकार क्रमशः जम्बूप्रसाद जैन एवं सुमनचन्द्र पटेल थे।

होती हैं, क्योंकि इस कथा में सिद्धचक्र पूजा का ही महत्त्व बताया गया है। प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' दिगम्बर सम्प्रदाय में विरचित है, जिसमें 'श्रीपालचरित' विषयक कृतियाँ कतिपय निम्नलिखित हैं–

१.	सिद्धचक्ककहा	– नरसेन	– वि. १४वीं शती	– अपभ्रंश
२.	सिद्धचक्कमाहप्प	– रइधू	– वि. १५वीं शती	– अपभ्रंश
३.	श्रीपालचरित	– भट्टारक सकलकीर्ति	– वि. १५वीं शती	– संस्कृत
४.	श्रीपालचरित	– भट्टारक श्रुतसागर	– वि. १५वीं शती	– संस्कृत
५.	श्रीपालचरित	– कवि धर्मधर	– वि. १५वीं शती	– संस्कृत
६.	श्रीपालचरित	– ब्रह्म नेमिदत्त	– वि.सं १५८५	– संस्कृत
७.	सिद्धचक्रपूजा	– शुभचन्द्र	– वि. १६वीं शती	– संस्कृत
८.	श्रीपालचरित	– कवि परिमल	– वि. १६वीं शती	– हिन्दी
९.	श्रीपालचरित	– कवि वादिचन्द्र	– वि. १७वीं शती	– हिन्दी

इसके अतिरिक्त और भी अनेक कृतियाँ हो सकती हैं, जिनका ज्ञान हमें अनुसन्धान करने पर ही हो सकता है। एक कृति कवि सोमसेन की भी अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' उसी के आधार पर लिखा गया है;[३] परन्तु वर्तमान में हमें उसके कहीं भी दर्शन नहीं हो सके हैं।

प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' इसी परम्परा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें बिना किसी सर्ग-विभाजन के एक ही धारा के प्रवाह की तरह ७५६ छन्द लिखे गये हैं। ये छन्द मुख्यतः दोहा और चौपई हैं, परन्तु यत्र-तत्र पद्धरि, सोरठा, अडिल्ल, रोला आदि का भी अति सुन्दर प्रयोग हुआ है। कृति के अन्तःपरिशीलन से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि यह कृति वस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी-जैन-साहित्य की एक बहुत मूल्यवान रचना है।

कृति का मूल सन्देश

प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' में कवि ने कोटिभट राजा श्रीपाल एवं महासती मैनासुन्दरी की लोकप्रसिद्ध कथा के माध्यम से मूलतः शीलभावना, सत्संगति, कर्मसिद्धान्त एवं धर्मध्यान की शिक्षा दी है, जो लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण हेतु वर्त्तमान में भी अत्यन्त उपादेय है। यथा–

---

३. "सोमसेन अनुसार ले, दौलतराम सुखदाय।
यह भाषा पूरण करी, सकल संघ सुखदाय।"
-श्रीपालचरित, छन्द ७५६

(क) **शील भावना**—शील जीवन का श्रेष्ठ शृंगार है। उसके बिना जीवन को धिक्कार है। जो जीव शील का पालन नहीं करते, वे इस लोक में अपयश आदि और परलोक में नरकादि दुःखों को प्राप्त करते हैं। कुशील इतना बड़ा पाप है कि उसके समक्ष अन्य सभी पाप मेरु के समक्ष सरसों के समान हैं। यथा—

"सील बिना जीवन धिक्कार, नर नारी को सील जु सार।
ये ही जग आभूषण जानि, सील पूजि देवन करि मान॥ ३०४॥"
"परतिय सेवन तें अघ होय, ता फल नरक होय है सोय।
अपजस होय लोक में जान, ह्वै वध बंधन धन की हान॥ २७६॥"
"इक दिस सरव पाप पग सोय, इक दिस सीलभंग दिस जोय।
सब अघ तो सरसूं सम जानि, सील भंग अघ मेरु समान॥ ३१३॥"

(ख) **सत्संगति**—कवि का कहना है कि दुष्ट लोगों की संगति जीव का घोर अहित करनेवाली है और सज्जनों की संगति परमहित करने वाली है, अतः हमें सज्जनों की ही संगति का प्रयत्न करना चाहिए और दुर्जनों की संगति तो कथमपि नहीं करनी चाहिए। सिंह, सर्प, विष, अग्नि आदि की संगति से भी मनुष्य की उतनी हानि नहीं होती, जितनी कि दुर्जन की संगति से होती है; क्योंकि उनसे तो कदाचित् एक जन्म में ही हानि होती है, पर दुर्जन की संगति से जन्म-जन्म में घोर हानि होती है। यथा—

"या जग संग उच्च तें सही, क्या क्या गुण उपजे नहीं कही।
नीच संग तें दूषण कोय, कौन कौन उपजे नहीं सोय॥ ३३॥"
"सिंघ साँप विष को संग करो, पै नहीं दुष्ट तणो संग खरो॥ ६४०॥
इनके संग तें इक भव मरे, पाप थकी भव भव दुख भरे।
तातें पापिन को सँग नाँहि, कीजे जो निज तन हूँ जाहि॥ ६४१॥
पड़नो सिखर कूप बर जानि, सस्तर तें मरनो सुभ ठांनि।
अगनिपात अहिमुख बर हाथ, पै नहीं ठीक कुबुधि को साथ॥ ६४२॥"

(ग) **कर्मसिद्धान्त**—जैनदर्शन का कर्मसिद्धान्त अत्यन्त गूढ़ है; पर संक्षेप में कवि ने यहाँ इतना ही समझाया है कि जीव को जो भी सांसारिक सुख या दुःख की प्राप्ति होती है, वह सब उसके पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है और उसे कोई मिटा नहीं सकता। तथा अन्य कोई तो उसमें निमित्त मात्र होता है बस, कार्य तो वस्तुतः कर्मानुसार ही होता है। यथा—

"जो सुख दुःख जीव कूं होय, पूर्व उपार्जित है सब सोय॥ १४२॥"
"सुख दुख होय भाग तें सही, ताकूं मेट सके नहीं कोइ॥ ४१॥"
"मैं तो निमित मात्र करतार, कारज होय कर्म अनुसार॥ ६१॥"

(घ) **धर्म**—निश्चय से आत्मा के शुद्धभाव का नाम ही धर्म है,[४] परन्तु व्यवहार से दया-दानादि पुण्य भावों को भी धर्म कहते हैं। ऐसा यह धर्म ही जीव को सुख देने में समर्थ है, अन्य कोई नहीं। धर्म के बिना जीव को संसार में परिभ्रमण करते हुए अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं, अतः दृढ़तापूर्वक धर्म की ही आराधना करना चाहिए, कभी भूलकर भी पापाचरण नहीं करना चाहिए। यथा—

"धर्म बिना जिय कूं जग मांही, सुख देने को समरथ नांहि ॥ ७४ ॥"

"धर्म बिना जीव भमें संसार, पाए दुख तिनको नहीं पार।
जेते दुख सब अघ तें होय, धर्म थकी सुख ही सुख जोय ॥ ७७ ॥
ऐसो जानि धर्म दिढ़ करो, भूलि प्रमाद न हिरदै धरौ।"

निश्चय-व्यवहार रूप धर्म का समन्वय करते हुए कवि ने यह भी कहा है कि व्यवहारधर्म से कल्पवृक्ष की भाँति मनोवांछित पदार्थों की प्राप्ति होती है, परन्तु निश्चयधर्म का आराधक इन सांसारिक पदार्थों को नहीं चाहता अतः उसे मोक्षमार्ग व मोक्ष की प्राप्ति होती है। यथा—

"धर्म कल्पवृछ वंछित देय, राजपुत्र धन भोग सु जेय।
जे संसार भोग नहिं चहै, सो धर्म तें सिवमारग लहै ॥ १५२ ॥"

धर्मध्यान के प्रसंग में कवि ने णमोकार मंत्र की महिमा बताकर उसके जप की प्रेरणा भी दी है। यथा—

"महामंत्र सबकूं सुखदाय, सुमरो भवि सब विघन नसाय ॥ २९६ ॥"

"ऊठत बैठत चलते सोय, पुर घर बन मंदिर में जोय।
सुख-दुख में जुद थानक सही, जोग्य मंत्र जपनूं सुखमही ॥ २९७ ॥"

(ङ) **अध्यात्म**—अध्यात्म सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति की आत्मा है। महाकवि पं. दौलतराम कासलीवाल ने भी इस 'श्रीपालचरित' में यत्र-तत्र कथा-ब्याज से अध्यात्म का महान् सन्देश दिया है। उदाहरणार्थ एक प्रसंग द्रष्टव्य है जिसमें श्रीपाल अपनी माँ को देश-देशान्तर में भ्रमण से उपार्जित अपार धनादि सामग्री दिखाता है, परन्तु उसकी माँ उसे सांसारिक लक्ष्मी का मोह त्यागकर ज्ञानलक्ष्मी को प्राप्त करने का मंगल आशीर्वाद देती है। यथा—

"मात कही सुत सुनि मो बैन, भव लखमी क्या पाई ऐन ॥ ५३८ ॥
तू सिव लखमी को भरतार, ज्ञान लछी पासी निरधार।
अबिनासी रिधि पासी सही, इम कह भट को मद छेदई ॥ ५३९ ॥
माता श्रीपाल कूं सही, ज्ञानभई उपदेस जु कही।
धन्य मात ऐसे जु कहै, सुत के सिवमारग कूं चहै ॥ ५४० ॥"

---

४. 'धर्म आपनो है शुध भाव' —श्रीपालचरित, छन्द ७६

पाण्डुलिपि-परिचय

प्रस्तुत कृति का सम्पादन मुझे श्री भट्टारक यशःकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थ भण्डार ऋषभदेव, जिला उदयपुर (राजस्थान) में उपलब्ध एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार पर करना पड़ा है, क्योंकि बहुत प्रयत्न करने पर भी मुझे इसकी कोई दूसरी हस्तलिखित प्रति नहीं मिली। यदि किसी सज्जन को इस कृति की कहीं कोई अन्य हस्तलिखित प्रति प्राप्त हो तो वे मुझे बताने की कृपा करें, ताकि अगले संस्करण में उसका उपयोग किया जा सके।

श्री भट्टारक यशःकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थ-भण्डार, ऋषभदेव, जिला उदयपुर में उपलब्ध हस्तलिखित प्रति का लेखन किन्हीं गुरुजी धूलजी गुलाबचन्द ने फाल्गुन शुक्ला २, शनिवार वि. सं. १९१२ को पूर्ण किया है। जैसा कि उसके अन्त में स्पष्ट लिखा है—

"इति श्रीपालचरित सम्पूर्ण। गुरुजी धूलजी गुलाबचन्द लिखतम् प्रतापगढ़ मध्ये गोपालगंज में पोसाल वेकमलागछे सरावक नरसीगपुरा हीराचन्दजी वाचवा अर्थे लिखितं। संवत् १९१२ फागुन मासे शुक्लपक्षे तिथि २ शनिवारे।"

परन्तु यह प्रति किस मूल प्रति के आधार से लिखी गयी है—यह नहीं बताया गया है। कवि द्वारा स्वयं लिखित प्रति के आधार का उल्लेख मिलता तो बड़ा हर्ष होता। खैर, इस उक्त प्रति में कुल ४८ पत्र (९५ पृष्ठ) हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग ११, १२ या १३ पंक्तियाँ मिलती हैं। प्रत्येक पंक्ति में लगभग १३ या १४ शब्द हैं। प्रति का आकार २३ x १४ से.मी. है। प्रति का लेख बहुत अच्छा नहीं है तो बहुत गन्दा भी नहीं है; परन्तु लेखन में अशुद्धियों की भरमार पाई जाती है। ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं की अशुद्धियाँ तो कदम-कदम पर ही मिलती हैं। बीच में प्रसंगवश जहाँ संस्कृत के कुछ श्लोक आये हैं वे तो अत्यधिक अशुद्ध हैं। उनके शुद्ध रूप का ज्ञान बहुत परिश्रम करके भी नहीं हो पाता है। यद्यपि मैंने अपनी योग्यता के अनुसार उन्हें इस संस्करण में यथासम्भव शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत संस्करण

प्रस्तुत संस्करण उपरिकथित एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार पर तैयार करके प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें मैंने मूल पाठ को यथावत् ही रखा है, परन्तु कदम-कदम पर छन्दानुरोधादि को ध्यान में रखकर ह्रस्व-दीर्घ मात्रा की अशुद्धियों को अवश्य ठीक कर दिया है। जैसे, मूल प्रति में यह प्रथम पंक्ति इस प्रकार लिखी है—"तीर्थंकर चौबिस जीन धर्मराज के इस।" परन्तु मैंने इसे इस प्रकार लिखा है—"तीर्थंकर चौबीस जिन, धर्मराज के ईस।" और मैं समझता हूँ कि इसे इसी प्रकार

लिखा जाना उचित है। स्वयं कवि ने भी इसे इसी प्रकार लिखा होगा, परन्तु प्रतिलिपिकार से प्रमादवश मात्राओं की ऐसी अशुद्धियाँ हुई होंगी।

इस संस्करण में मैं जनसाधारण के लिए मूल कृति का आधुनिक हिन्दी में सरल गद्यानुवाद भी देना चाहता था, पर समयाभाव से ऐसा नहीं कर सका हूँ। हाँ, कदम-कदम पर कठिन शब्दों के हिन्दी-सरलार्थ अवश्य पाद-टिप्पणी में दे दिये हैं, जिससे मैं समझता हूँ कि अब अर्थ लगाने में किसी को भी विशेष कठिनाई नहीं होगी तथा थोड़ी सहायता प्रारम्भ में प्रदत्त 'कथा-सार' से भी ली जा सकती है। स्थान-स्थान पर आने वाले नामों से परिचित कराने के लिए 'परिशिष्ट' में नामवाची शब्दों का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। आवश्यकता पड़ने पर उनको भी देखा जा सकता है।

'श्रीपालचरित' के रचयिता

प्रस्तुत 'श्रीपालचरित' के रचयिता महाकवि पं. दौलतराम कासलीवाल हैं। इनके जीवन एवं साहित्य का विस्तृत परिचय मैं अपने पी-एच. डी. के शोध-प्रबन्ध 'पण्डित दौलतराम कासलीवाल और उनका साहित्य' में लिख चुका हूँ। यहाँ विस्तार-भय से वह सब लिखना सम्भव नहीं है। विशेष जिज्ञासु वहाँ देखने का कष्ट करें। संक्षेप में यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ये 'छहढाला' वाले पं. दौलतराम से अलग हैं और इनका जन्म राजस्थान में दौसा जिले के बसवा नामक ग्राम में आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी वि.सं. १७४९ को हुआ था। इनके पिता का नाम आनन्दराम था और ये खण्डेलवाल वैश्य जाति के उत्तम पुरुष थे।[५]

पं. दौलतराम कासलीवाल जयपुर राजदरबार में वकील या मन्त्री के पद पर कार्य करते थे और इतने प्रतिभाशाली एवं कर्मठ थे कि अपने सम्पूर्ण राज्यकार्य को भी कुशलता के साथ करते थे और शेष समय में शास्त्रों के अध्ययन, लेखन एवं प्रवचन द्वारा समाज का उत्तम उपकार भी करते थे। वे राज्यकार्य के अधीन मथुरा, उदयपुर और जयपुर में बहुत वर्षों तक रहे, पर सभी स्थानों पर राज्यकार्यों के साथ-साथ शास्त्र-प्रवचनादि के द्वारा स्व-पर-कल्याण में भी अनुरक्त रहते थे।

पण्डित दौलतराम कासलीवाल को जैन तत्त्वज्ञान की शिक्षा सर्वप्रथम आगरा की 'अध्यातम सैली' से प्राप्त हुई थी और वे जैनदर्शन के ठोस विद्वान् बन गये थे।

---

५. "जाति बानियां श्रावक सोय, खण्डेलवाल जानहुं सब कोय ।
अलि कहिए कासलीवाल, आनन्दराम सुत वचन रसाल ॥"
—पुण्यास्रवकथाकोश-भाषा, अन्तिम प्रशस्ति, छन्द १२

उन्हें जिनवाणी के चारों अनुयोगों का गहरा ज्ञान था। उनकी विद्वत्ता की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी। अनेक जिज्ञासु धर्मचर्चा-हेतु उनसे मिलने भी आते थे। जयपुर-निवासी ब्र. रायमलजी भी उनसे मिलने उदयपुर तक गये थे और उनकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हुये थे।[६] पं. जयचन्दजी छाबड़ा ने तो आपको 'पण्डितराय' विशेषण से सम्बोधित किया है—

"दौलतराम गुणी अधिकाय। पंडितराय राज में जाय।
ताकी बुद्धि लसै सब खरी। तीन पुराण वचनिका करी॥"

—सर्वार्थसिद्धि-वचनिका, प्रशस्ति, छन्द १०

पं. दौलतराम कासलीवाल संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं, विविध कोश-ग्रन्थों एवं व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, सिद्धान्त आदि विषयों के भी अच्छे ज्ञाता थे; जैसा कि उनकी कृतियों में—विशेषकर 'अध्यात्मबारहखड़ी' में—पदे-पदे प्रतिध्वनित होता है।

पं. दौलतराम कासलीवाल का स्वर्गवास ८० वर्ष की उम्र में भाद्रपद शुक्ला द्वितीया वि.सं. १८२९ को जयपुर में हुआ।

पं. दौलतराम कासलीवाल की रचनाएँ

पं. दौलतराम कासलीवाल की अद्यावधि २० रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनमें से १० पद्यात्मक हैं और १० गद्यात्मक। पद्यात्मक रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

१. क्रियाकोश, २. जीवन्धरस्वामिचरित, ३. अध्यात्मबारहखड़ी,
४. विवेक-विलास, ५. श्रेणिकचरित, ६. श्रीपालचरित,
७. चौबीस दण्डक, ८. सिद्धपूजाष्टक, ९. चतुर-चितारणी,
१०. सार-समुच्चय।

गद्यात्मक रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

१. पुण्यास्रवकथाकोश-भाषा, २. आदिपुराण-वचनिका,
३. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय-भाषाटीका, ४. हरिवंशपुराण-वचनिका,

---

६. देखिए उनकी 'जीवन-पत्रिका', पृष्ठ ४ का यह उद्धरण—

"पीछैं राणां का उदैपुर विषैं दौलतराम तेरापंथी, जैपुर राजा के उकील तासूँ धर्म अर्थि मिले। वाकै संस्कृत का ज्ञान नीकां, बाल अवस्था सूं ले ब्रद्ध अवस्थापर्यंत सदैव सौ-पचास शास्त्र का अवलोकन कीया। और उहाँ दौलतराम के निमित्त करि दस-बीस साधर्मी वा दस-बीस बायां सहित सैली का बणाव बणि रह्या।"

—पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व (डॉ. भारिल्ल), पृष्ठ ३३४

५. परमात्मप्रकाश-भाषा,
६. तत्त्वार्थसूत्र-टब्बाटीका,
७. वसुनन्दि-श्रावकाचार-टब्बाटीका,
८. पद्मपुराण-वचनिका,
९. कार्तिकेयानुप्रेक्षा-टब्बाटीका,
१०. समयसार-कलश- टब्बाटीका।

इनमें से १० रचनाएँ कवि की मौलिक रचनाएँ हैं और १० अनुवाद या टीकाग्रपरक। तथा यदि दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो ७ रचनाएँ प्रथमानुयोग से सम्बन्धित हैं, १ करणानुयोग से सम्बन्धित है, ४ चरणानुयोग से सम्बन्धित हैं और ८ द्रव्यानुयोग से सम्बन्धित हैं, जिससे प्रकट होता है कि पण्डित दौलतराम कासलीवाल चारों अनुयोगों के अच्छे ज्ञाता थे।

इनमें से अधिकांश रचनाएँ अद्यावधि अप्रकाशित हैं, जिनके प्रकाशन का कार्य शीघ्र होना चाहिए।

–वीरसागर जैन

कथासार

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पुरानी बात है। राजगृह के उपवन में तीर्थंकर महावीर का समवसरण आया। उपवन के माली ने यह सुखद समाचार शीघ्र जाकर महाराज श्रेणिक को सुनाया। राजा श्रेणिक हर्षोल्लास पूर्वक नगर के जनसमूह के साथ भगवान महावीर के दर्शन हेतु पहुँचे। दर्शन-पूजनोपरान्त श्रेणिक ने पूछा—"हे प्रभो! सिद्धचक्र की पूजा का क्या फल है? कोई कथा सुनाइये न!" तब गौतम गणधर ने यह कथा इस प्रकार सुनायी—

जम्बू द्वीप के आर्यखण्ड में, भरत क्षेत्र के मालव देश में एक उज्जयिनी नाम का अत्यन्त समृद्ध नगर है। वहाँ राजा प्रजापाल अपनी रानी सौभाग्यसुन्दरी के साथ सुखपूर्वक निवास करता था। उसके दो पुत्रियाँ थीं—सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी। कर्मयोग से बचपन में ही उनकी शिक्षा अलग-अलग गुरुओं के पास हुई। सुरसुन्दरी के गुरु मिथ्यादृष्टि थे, परन्तु मैनासुन्दरी की शिक्षा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी-ध्यानी निर्ग्रन्थ मुनि के पास विधिवत् सम्पन्न हुई। जब वे दोनों बड़ी हो गईं तो एक दिन सहज ही उनके पिता ने उनसे अपना मनोवांछित पति माँगने को कहा। सुरसुन्दरी ने तो अहिच्छत्र नगर के राजा वीरदमन को माँग लिया, किन्तु मैनासुन्दरी ने कहा—"हे पूज्य पिताश्री! उच्चकुलीन शीलवती महिलाएँ कभी इस प्रकार मनोवांछित वर नहीं माँगती, अपितु उनके माता-पिता जिसके साथ उनका विवाह कर देते हैं वही उनका पति होता है। शेष सब सुख-दुःख तो जीव को अपने-अपने कर्मोदयानुसार प्राप्त होता है, उसे कोई नहीं मिटा सकता; अतः आप जहाँ उचित समझते हों, वहीं मेरा विवाह कर दीजिए।" मैनासुन्दरी के मुख से कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त होने की बात सुनकर राजा प्रजापाल अत्यन्त क्रुद्ध हो गया, क्योंकि वह बहुत अज्ञानी था। उसने मन ही मन किसी दीन-हीन दरिद्री कोढ़ी पुरुष से उसका विवाह करने का निर्णय कर लिया। एक दिन जब वह वन-भ्रमण को गया तो उसे वहाँ कोढ़ी पुरुष श्रीपाल मिला। बस, अब तो उसने इस कोढ़ी श्रीपाल से ही मैनासुन्दरी के विवाह का पक्का निर्णय कर लिया। यद्यपि सभी ने उसे बहुत समझाया, पर वह नहीं माना और उसने मैनासुन्दरी का विवाह कोढ़ी श्रीपाल से कर दिया। श्रीपाल

यद्यपि राजा था परन्तु भयंकर कोढ़ हो जाने के कारण अपने ७०० कोढ़ी सेवकों के साथ राज्य से बाहर वन में रहने लगा था। मैनासुन्दरी धैर्यपूर्वक पति की सेवा करते हुए जीवन-यापन करने लगी।

एक दिन मैनासुन्दरी अपने पति के साथ जिनमन्दिर गई। वहाँ उसे एक मुनिराज मिले। उसने मुनिराज से विनयपूर्वक पूछा– हे मुनिवर! मेरे पति का कोढ़ दूर होगा या नहीं? मुनिराज बोले– हे पुत्री! तेरा पति अत्यन्त पुण्यवान है। वह अपरम्पार विभूति का भोक्ता महामण्डलेश्वर होने वाला है, चरमशरीरी भी है; अतः तू कोई चिन्ता मत कर। मुनिराज के वचन सुनकर मैना बहुत हर्षित हुई; क्योंकि उसे दृढ़ श्रद्धान था कि मुनिराज के वचन कभी असत्य नहीं हो सकते।

मैनासुन्दरी ने विनयपूर्वक मुनिराज से कोढ़ दूर करने होने का उपाय पूछा। मुनिराज ने समझाया–"हे पुत्री! धर्म ही सर्व दुःखों को दूर करने का सच्चा उपाय है, अतः तू सर्व प्रकार से एक धर्म की ही मंगल आराधना कर। जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर समस्त अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार धर्म का आराधन करने से जीव के समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। धर्म मनोवांछित फल देने वाला कल्पवृक्ष है, अतः निरन्तर धर्म का सेवन करो। हे पुत्री! अष्टाह्निका पर्व के दिन आने वाले हैं। इनमें तुम प्रमाद छोड़कर सिद्धचक्र की पूजा करो और जिनेन्द्र का गन्धोदक इनके शरीर पर छिड़को, समस्त व्याधि दूर हो जाएगी।"

मैनासुन्दरी मुनिराज के उक्त वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई। उसने यथोक्त विधि से अपार उत्साह के साथ सिद्धचक्र की पूजा की और अपने पति एवं अन्य ७०० कोढ़ी सेवक जनों पर गन्धोदक लगाया। फलस्वरूप सभी का कोढ़ दूर हो गया और सबके शरीर कामदेव के समान सुन्दर हो गये। इससे सभी लोग धर्म की दृढ़तापूर्वक आराधना करने लगे और पुनः नगर में जाकर सुखपूर्वक निवास करने लगे।

एक दिन अचानक राजा प्रजापाल को अपनी पुत्री मैनासुन्दरी की याद आई। उसने सेवक भेजकर पता लगवाया कि वह अब कहाँ और किस स्थिति में है। जब उसे श्रीपाल के सेवकों द्वारा कोढ़ मिटने आदि के सर्व समाचार मिले तो वह बहुत हर्षित हुआ और उनसे मिलने गया। उसने अपने अपराध के लिए उनसे हृदय से क्षमायाचना की और वह उनको अत्यधिक स्नेहपूर्वक अपने घर भी ले आया । उसने उन्हें बहुत रत्न-ग्रामादि भेंट दिये और थोड़े दिन वहीं रुकने की प्रार्थना भी की। श्रीपाल-मैनासुन्दरी भी प्रसन्न होकर वहाँ रुक गये।

एक दिन श्रीपाल ने मैनासुन्दरी से कहा–"हे प्रिये! यहाँ सब लोग मुझे 'राजा का दामाद' कहते हैं और कोई भी मेरे पिता का नाम तक नहीं जानता;

अतः मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता। मैं अब ससुर के द्रव्य पर जीवन-यापन नहीं करना चाहता, अपितु देशान्तर जाकर स्वयं कुछ कमाकर अपना पुरुषत्व प्रकट करना चाहता हूँ।" मैनासुन्दरी ने कहा—"हे स्वामी! मैं आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकती, अतः मुझे भी अपने साथ ले चलिए।" श्रीपाल ने कहा—"हे प्रिये! तुम्हारा चलना ठीक नहीं है, अतः तुम शान्तिपूर्वक माता की सेवा करते हुए माता के पास ही रुको, मैं बारह वर्ष में अवश्य लौट आऊँगा।" मैना बोली—"ठीक है, किन्तु यदि आप बारह वर्ष में नहीं आए तो निश्चित रूप से मैं आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लूँगी, अतः आप बारह वर्ष की मर्यादा का उल्लंघन मत करना। तथा हे स्वामी! इस अत्यन्त दुर्लभ एवं महा कल्याणकारी जिनधर्म का सदा ध्यान रखना, कभी इसका विस्मरण मत करना। तथा अपनी माता और मुझको भी कभी मत भूलना।"

श्रीपाल ने मैनासुन्दरी को आश्वस्त करके अपनी माँ के पास उज्जयिनी में ही छोड़ दिया। ७०० सेवक भी वहीं छोड़ दिये और स्वयं अकेले ही घोर वन-पर्वतों को पार करता हुआ देशान्तर चला गया। चलते-चलते वह एक भृगुकच्छप नामक नगर में पहुँचा। वहाँ एक बहुत धनवान धवल सेठ आया हुआ था। उसके साथ ५०० जहाज थे और अनेक महाजन वैश्य व्यापारी भी थे। वहाँ उनके सभी जहाज समुद्र में अटक गये थे। बहुत उपाय करने पर भी नहीं निकले। किसी ने कहा— "व्यन्तर देव ने हमारे जहाज पकड़ लिये होंगे और उसे जबतक किसी बलिष्ट, सुन्दर एवं गुणवान युवक की बलि नहीं देंगे तबतक वह हमारे जहाज नहीं छोड़ेगा"। धवल सेठ ने कहा—"ठीक है, शीघ्र ही किसी ऐसे युवक ढूँढ़कर लाओ। जो भी लाएगा, उसे मैं मुँहमाँगा धन देऊँगा।" सभी लोग चारों दिशाओं में खोजने निकले, पर ऐसा युवक किसी को नहीं मिला। जब वे सभी थक गये तो सहसा किसी की नजर एक वृक्ष तले निःशंक सोए हुए श्रीपाल पर पड़ी। सर्वथा योग्य इस युवक को देखकर वे प्रसन्न हो गए और बलि हेतु धवल सेठ के पास ले गये। सेठ ने इसे स्नानाभूषणोपरान्त बताया—"अब हम तुझे देवता की बलि चढ़ा रहे हैं।" श्रीपाल ने कहा—"आपको काम क्या है, मुझे बताइये।" सेठ बोला—"हमारे जहाज समुद्र में अटक गये हैं, हम उनको आगे चलाना चाहते हैं।" श्रीपाल ने लीलामात्र में सभी जहाजों को चला दिया। इससे सेठ एवं अन्य सभी व्यापारी बहुत आश्चर्यचकित एवं हर्षित हुये। सेठ ने श्रीपाल को रोजगार देकर अपने साथ रख लिया।

मार्ग में आगे एक बार चोरों ने सेठ के जहाजों को घेर लिया, परन्तु श्रीपाल ने उनसे भी जहाजों की रक्षा कर दिखायी। इतना ही नहीं, श्रीपाल ने चोरों का भी ऐसा हृदय-परिवर्तन कर दिया कि वे सज्जन बन गये और श्रीपाल की बहुत-बहुत प्रशंसा करते हुए अनेक मूल्यवान् रत्नादि भेंट कर गये।

आगे चलकर ये सभी लोग रत्नद्वीप पहुँचे। वहाँ एक अत्यन्त प्राचीन ध्वजामंडित विशाल भव्य सहस्रकूट चैत्यालय था; परन्तु इसके द्वार वज्रमय थे और अज्ञातकाल से बन्द पड़े हुये थे, कोई देव भी उन्हें खोल नहीं सकता था। किन्तु श्रीपाल ने जैसे ही इनके कपाटों पर हाथ लगाया, वे खुल गये। श्रीपाल ने जय-जयकार के साथ अन्दर प्रवेश किया, भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर जिनेन्द्र को प्रणाम किया और दिव्य अष्टद्रव्य से पूजा भी की।

पूजा करने के बाद जैसे ही श्रीपाल मन्दिर से बाहर निकले, उनके पास एक विद्याधर आया। उसने श्रीपाल से कहा--"हे पुण्य पुरुष! वैताढ्य पर्वत की दक्षिण दिशा में दो नगर हैं। एक रथनूपुर और दूसरा बलवक्र। मैं उनका राजा विद्युतप्रभ हूँ। मेरी रानी मेघमालिनी है। मेरे चित्र-विचित्र नाम के दो पुत्र हैं और एक मदनमंजूषा नाम की पुत्री है। एक दिन मैंने चिन्तातुर हो मुनिराज यशोभद्र से पूछा था कि मेरे पुत्री मदनमंजूषा का विवाह कब और किससे होगा? मुनिराज ने मुझे बताया था कि एक पुरुष सहस्रकूट चैत्यालय के पट खोलेगा और वही मेरी पुत्री का पति होगा। मैं तभी से आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज बड़े भाग्य से आप पधारे हैं। अब आप मदनमंजूषा को स्वीकार कीजिए।"

इसके बाद उस विद्युतप्रभ विद्याधर ने श्रीपाल के साथ मदनमंजूषा का उत्साहपूर्वक विवाह कर दिया और अपार सम्पत्ति के साथ दो विद्याएँ भी भेंट कीं--
१. शस्त्रनिवारिणी, और २. बन्धविमोचिनी।

श्रीपाल जब मदनमंजूषा को लेकर अपने संघ में लौटे तो धवल सेठ ऊपर से खुश दिखाई दिया, पर अन्दर से वह मदनमंजूषा को देखकर कामविह्वल हो गया। उसका मन व्यापार से विमुख हो गया। वह किसी भी युक्ति से मदनमंजूषा को प्राप्त करना चाहता था। उसने रत्नद्वीप से अपने सभी जहाज घर की ओर लौटा लिये। तथा अपने मन की बात अपने एक मित्र को कही। मित्र ने पहले तो धवल सेठ को अनेक प्रकार से इस अनैतिक कार्य से विरक्त होने की बहुत शिक्षा दी, पर जब वह नहीं माना तो आखिरकार उसने कपट से श्रीपाल को समुद्र में धक्का दे दिया। सेठ ने मदनमंजूषा से दुर्व्यवहार करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह महा शीलवती थी, अतः मणिभद्र यक्ष आदि अनेक देवताओं ने उसकी रक्षा की। धवल सेठ ने लज्जित होकर मदनमंजूषा से क्षमायाचना की।

उधर श्रीपाल णमोकार मन्त्र का जाप करते हुए समुद्र पार करने का प्रयत्न करने लगे। शुभकर्मोदय से उनको एक लकड़ी का बड़ा टुकड़ा मिल गया। उन्होंने उस पर चढ़कर समुद्र पार कर लिया। समुद्र पार करके वे पटण देश में पहुँचे। वहाँ राजा धनपाल राज्य करता था। उसके गुणमाला नामक एक अत्यन्त सुन्दर एवं

गुणवती कन्या थी। राजा धनपाल ने चिन्तातुर होकर एक बार एक अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि मेरी पुत्री का वर कौन होगा और मुनिराज ने बताया था कि एक पुरुष इस समुद्र को तिर करके आएगा, वही तेरी पुत्री का वर होगा। अतः राजा धनपाल श्रीपाल को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उनको बड़े आदरपूर्वक अपने नगर में ले गया। वहाँ उसने उन्हें विविध वस्त्राभूषण भेंट किये और ठाट-बाट से अपनी पुत्री गुणमाला का विवाह कर दिया। श्रीपाल और गुणमाला सुखपूर्वक रहने लगे।

उधर वह धवल सेठ भी संयोग से इसी नगर में आ निकला और राजा धनपाल से भी मिलने गया। वहाँ उसने अप्रत्याशित रूप से श्रीपाल को देखा तो वह बहुत घबरा गया; परन्तु उसने यहाँ एक नयी चाल चली। उसने कुछ भाँड-नकल वालों को एकान्त में बुलाया, उनको धन का लालच दिया और कहा कि तुम सब राजा के यहाँ जाओ और श्रीपाल को देखकर उससे चिपक जाओ, रोने लगो, कहने लगो कि अरे! मेरा भाई मिल गया, मेरा पुत्र मिल गया, मेरा पिता मिल गया आदि-आदि; और यदि कोई पूछे तो कह देना कि बहुत दिन पहले ये हमसे बिछुड़ गया था और अब मिला है। भाँड-नकलचियों ने सचमुच ही यह नाटक कर दिखाया जिससे राजा ने श्रीपाल को भाँड-पुत्र समझकर सूली पर लटकाने का आदेश दे दिया। गुणमाला भी बहुत दुःखी हुई, परन्तु उसने अलग जाकर विनयपूर्वक श्रीपाल से कहा—हे स्वामी! मुझ पर दया कीजिए और सत्य बात क्या है, मुझे बताइए। श्रीपाल ने कहा—धवल सेठ के संघ में मदनमंजूषा है, उससे जाकर बात करो, वह सब सत्य बताएगी। गुणमाला मदनमंजूषा के पास गई और उसके मुख से सम्पूर्ण यथार्थ स्थिति से परिचित हुई। मदनमंजूषा भी श्रीपाल के समाचार पाकर अत्यन्त हर्षित हुई। उन दोनों ने आकर राजा धनपाल को सम्पूर्ण सत्य वृत्तान्त सुनाया। राजा ने श्रीपाल से क्षमायाचना की और सम्मानपूर्वक हाथी पर बैठाकर नगर में जुलूस निकाला। इसके बाद राजा ने क्रुद्ध होकर धवल सेठ को दण्डित करना चाहा, परन्तु श्रीपाल ने उदार हृदय से क्षमा करा दिया।

इसके बाद एक दिन श्रीपाल सभा में बैठे थे कि कोई विदेशी व्यापारी आया। श्रीपाल ने पूछा—"हे वणिक्! तुम सभी जगह भ्रमण करते हो, यदि कहीं कोई अद्भुत बात देखी हो तो बताओ।" व्यापारी बोला—"इसी आर्यखण्ड के कुण्डलपुर नगर के राजा मकरकेतु के चित्ररेखा आदि १०० सुन्दर एवं गुणवती कन्याएँ हैं, परन्तु उन सबने यह प्रतिज्ञा रखी है कि यदि कोई हमें नृत्य एवं मृदंग में जीतकर प्रसन्न करे तो ही हमसे विवाह कर सकता है, अन्यथा हम आजीवन अविवाहित रहेंगी। किन्तु हे सज्जन! अभी तक कोई भी पुरुष उनको नहीं जीत

सका है।'' यह सुनकर श्रीपाल शीघ्र ही वहाँ पहुँचे। उन्होंने सभी कन्याओं को नृत्य-गीत आदि में जीतकर प्रसन्न कर लिया और उनसे विवाह कर लिया।

उसी समय वहाँ एक पुरुष ने आकर श्रीपाल से कहा—''हे सत्पुरुष मुझे कंचनपुर के राजा बड़सेन ने आपके पास भेजा है। आप वहाँ पधारिए और उनकी सुन्दर गुणवती ९०० कन्याओं से विवाह कीजिए।'' श्रीपाल जब वहाँ पहुँचे तो राजा बड़सेन ने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वागत करते हुए कहा—''मैं आपकी बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मुझे निमित्तज्ञानी मुनिराज ने बताया था कि जो पुरुष चित्ररेखा आदि १०० कन्याओं से विवाह करेगा, वही मेरी भी ९०० कन्याओं का पति होगा।

श्रीपाल जब इन ९०० कन्याओं से भी विवाह करके थोड़ा आगे चले तो फिर एक व्यक्ति ने आकर उनसे विनम्रतापूर्वक कहा—''हे प्रतापी पुरुष! कूंकणद्वीप के राजा के १६०० गुणवती कन्याएँ हैं। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी है कि जो हमको संस्कृत-समस्यापूर्ति में पराजित करेगा, हम उसी से विवाह करेंगी। परन्तु अभी तक कोई भी पुरुष उन्हें प्रसन्न नहीं कर सका है।'' श्रीपाल शीघ्र वहाँ गये। समस्यापूर्ति में बहुत सुन्दर-सुन्दर गूढ़ और रस-परिपूर्ण वार्तालाप हुआ। सभी कन्याएँ इनके उत्तरों से अत्यन्त हर्षित हुईं और उनका धूमधाम से श्रीपाल के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

थोड़ा आगे चलने पर एक अन्य स्थान पर २००० कन्याओं के साथ श्रीपाल का विवाह हुआ। फिर बालपुर नगर में भी ७०० कन्याओं के साथ विवाह हुआ। फिर तैलंग देश में भी १००० कन्याओं के साथ विवाह हुआ।

इसके बाद श्रीपाल अपने ससुर (गुणमाला के पिता) राजा धनपाल के पास दलबरतनपुर पहुँचे, जहाँ वे मदनमंजूषा और गुणमाला को छोड़कर गये थे। श्रीपाल की अपार लक्ष्मी को देखकर यहाँ सभी को बहुत प्रसन्नता हुई और उन्हें इससे धर्मध्यान की भी विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई; क्योंकि लोक एवं परलोक के सभी सुख धर्म से ही प्राप्त होते हैं।

श्रीपाल यहाँ सुखपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे कि एक दिन अचानक उनके मन में यह चिंता उत्पन्न हुई कि अरे! मैं तो यहाँ सुखपूर्वक समय व्यतीत कर रहा हूँ, परन्तु भूल गया हूँ कि वहाँ मेरी माता और पत्नी मैनासुन्दरी का क्या हाल होगा, अतः अब मुझे शीघ्र उज्जयिनी चलना चाहिए। मैं बारह वर्ष की कहकर आया था, वह भी अवधि समाप्त होने वाली है। यदि मैं समय रहते नहीं पहुँचा तो वह मेरी प्रियतमा (मैनासुन्दरी) आर्यिका दीक्षा ले लेगी।

अतः श्रीपाल ने शीघ्र ही अपने ससुर (गुणमाला के पिता) राजा धनपाल को

बुलाकर सारी बातें कहीं और उनसे विदाई लेकर उज्जयिनी की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में अष्टाह्निका पर्व के दिनों में सौराष्ट्र देश में गिरिनार पर्वत मिला। उन्होंने ये आठ दिन यहीं रुककर धर्मध्यानपूर्वक व्यतीत किये।

तथा वहाँ से आगे चलने पर उन्होंने अनेक राजाओं को जीता। अहिच्छत्रपुर के राजा अरिमरदन की भी ५०० कन्याओं से विवाह किया। आगे चलकर महाराष्ट्र में भी ५०० कन्याओं से विवाह किया। इसी प्रकार और भी अनेक राजाओं की सैकड़ों कन्याओं के साथ श्रीपाल ने विवाह किया।

इस प्रकार पुण्योदय से पूरे भूमण्डल पर श्रीपाल की कीर्ति फैल गई और उन्होंने महामण्डलेश्वर पद प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे जब अपनी उज्जयिनी में पहुँचे तो उन्होंने अपनी सारी सेना को बाहर छोड़ दिया और स्वयं घर के बाहर से उन्होंने छुपकर सुना कि अन्दर मैनासुन्दरी और उनकी माता कमलप्रभा इस प्रकार बात कर रही है–

"मैनासुन्दरी– हे माता! बारह वर्ष की अवधि पूर्ण होने में बस यह आज की रात्रि ही बाकी रह गयी है, परन्तु आपके पुत्र (अर्थात् श्रीपाल) अभी तक नहीं आये हैं, पता नहीं कहाँ हैं?

माता– हे पुत्री! चिन्ता मत कर! वह शीघ्र आ जाएगा। थोड़े दिन और शान्ति रख।

मैनासुन्दरी– हे माता! यदि वे आज भी नहीं आये तो मैं तो प्रातः काल आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लूँगी। मुझे अब भवसुख नहीं, शिवसुख चाहिए।

माता– हे पुत्री! धैर्य धारण कर! पता नहीं प्रातः तक क्या हो?

तभी अचानक श्रीपाल ने कपाट खटखटा कर कहा–हे प्रिय! द्वार खोलो। यह सुनते ही मैनासुन्दरी अत्यन्त हर्षित हो गई और द्वार खोल दिये। श्रीपाल ने अपने सारे समाचार सुनाये और फिर माता को अपनी जीती गयी समस्त लक्ष्मी (धन, वैभव, स्त्री आदि) दिखायी। माता ने श्रीपाल के मान को नष्ट करने हेतु ज्ञानमय उपदेश दिया–"हे पुत्र! इस भवलक्ष्मी को प्राप्त करने में क्या रखा है? तू तो शिवलक्ष्मी का पति होने वाला है, अतः तू उस अविनाशी लक्ष्मी की अभिलाषा रख।"

अहो, धन्य है ऐसी माता जो पुत्र का लोकोत्तर हित चाहती है।

इसके बाद श्रीपाल अपने सम्पूर्ण विशाल परिवार के साथ उज्जयिनी में सुखपूर्वक जीवन-यापन करने लगे। मैनासुन्दरी को सभी रानियों में पटरानी का पद प्राप्त हुआ।

एक दिन मैनासुन्दरी ने अपने पति से कहा–"हे स्वामी! मेरे पिता ने परीक्षा

हेतु मेरा विवाह क्रोधवश आपके साथ करा दिया था, इसका मेरे मन में बड़ा दुःख है। आप उसे किसी प्रकार शान्त कीजिए।"

श्रीपाल ने मैनासुन्दरी के पिता राजा प्रजापाल को बुलाकर मैनासुन्दरी को अच्छी तरह सन्तुष्ट कर दिया। प्रजापाल की प्रार्थना पर श्रीपाल उनके साथ एक ही हाथी पर बैठकर उनके नगर में भी धूमधाम से गये। इससे इनके आपसी सम्बन्धों की कटुता समाप्त हो गयी।

एक दिन श्रीपाल को अपने मूल देश चम्पापुर की याद आयी। उन्होंने विचार किया—"जबतक मैं अपने काका को युद्ध में नहीं जीत लूँगा, तबतक शान्ति से नहीं बैठूँगा। मैं अपने पिता का राज्य पुनः प्राप्त करके ही सुखी होऊँगा।"

श्रीपाल ने प्रजापाल की आज्ञा लेकर चतुरंगिणी सेना के साथ उज्जयिनी से अपनी जन्मभूमि चम्पापुर की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में उन्होंने पूर्ववत् अनेक राजाओं को जीतकर अतीव सम्मान प्राप्त किया।

चम्पापुरी पहुँचने पर उन्होंने अपने काका वीरदमन के पास एक दूत भेजा, परन्तु जब प्रेम से बात नहीं बनी तो दोनों की सेनाएँ युद्धभूमि में उतर आईं। घमासान युद्ध प्रारम्भ होने ही वाला था कि मन्त्रियों ने विचार-विमर्श किया—"ये दोनों चरमशरीरी हैं, इनमें से किसी का भी कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन सेना व्यर्थ ही बहुत मर जाएगी, अतः यदि ये दोनों राजा अकेले ही युद्ध कर लें तो अच्छा रहे।" उन्होंने दोनों राजाओं से प्रार्थना की। दोनों ही राजा दयालु थे, अतः मन्त्रियों की बात मान गये। मात्र उन दोनों में युद्ध होने लगा। बहुत देर हो गई, पर फैसला नहीं हुआ। आखिरकार सारे अस्त्र-शस्त्र छोड़कर दोनों मल्लयुद्ध करने लगे। इसमें श्रीपाल ने वीरदमन को बन्दी बना लिया। श्रीपाल की सेना में विजयदुन्दुभि बजने लगी। परन्तु श्रीपाल का हृदय-परिवर्तन हो गया। उसने वीरदमन से क्षमायाचना की—"आप मेरे पिता-समान हैं, मैंने अज्ञानतावश आपकी अविनय कर दी है, यह राज्य आप ही सँभाले रखिए।" वीरदमन का भी हृदय-परिवर्तन हो चुका था। वे बोले—"मैं इस निन्दनीय राज्य का क्या करूँ, मुझे तो अब शिवपद का राज्य चाहिए और मुझे तुमसे कोई द्वेष नहीं है, तुम तो मेरे अत्यन्त हितैषी सिद्ध हुए, क्योंकि तुम्हारे निमित्त से ही मुझे वैराग्य हुआ है।" और वीरदमन ने सागराचार्य के पास जाकर निर्ग्रन्थ-दीक्षा धारण कर ली। श्रीपाल ने उत्सव के साथ अपने जन्म-नगर में प्रवेश किया। अब श्रीपाल चम्पापुर के राजा होकर नीतिपूर्वक प्रजापालन करने लगे।

एक दिन श्रीपाल राजसिंहासन पर बैठे थे कि वनमाली षड्ऋतु के फल-फूल लेकर उपस्थित हुआ—"राजन! आज आपके वन में बड़े तपस्वी आचार्य श्रुतसागर

पधारे हैं।" यह समाचार सुनकर राजा ने हर्ष से उसे अपने वस्त्राभूषण भेंट कर दिये और उसी समय सात कदम उस दिशा में जाकर प्रणाम किया। उसके बाद नगर के नर-नारियों के साथ वे उत्साहपूर्वक मुनिराज के दर्शन हेतु गये, उनकी अष्टद्रव्य से पूजा की और उनके श्रीमुख से धर्मोपदेश भी सुना।

धर्मोपदेश के बाद राजा श्रीपाल ने मुनिराज से अपने पूर्वजन्म के विषय में पूछा—हे मुनिवर! मुझे किस पापकर्म के उदय से कोढ़ हुआ था? किस कारण से मैं समुद्र में गिराया गया था? फिर किस कारण से उसमें से निकल पाया था? मुझ पर चाण्डाल होने का आरोप क्यों लगा था? और मुझे अपनी पत्नी मैनासुन्दरी से इतना अधिक प्रेम क्यों है?

मुनिराज ने बताया—"हे श्रीपाल! तुम इसी भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर रत्नसंचयपुर नाम के एक नगर में श्रीकान्त नामक विद्याधरों के राजा थे। तुम्हारी रानी का नाम श्रीमती था। वह बहुत धर्मात्मा थी। एक दिन तुमने वन में सुगुप्त नामक नग्न दिगम्बर आचार्य से व्रत धारण किये थे। परन्तु थोड़े ही दिन बाद बुरी संगति में पड़कर तुमने उन व्रतों को भंग कर दिया और तुम अनेक पाप करने लग गये। हे श्रीपाल! उसी पाप-कर्म के फल से अब तुम अपने राज्य से भ्रष्ट हुए हो।

इसके बाद पूर्वजन्म में ही तुम (श्रीकान्त राजा) अपने ७०० सैनिकों के साथ एक दिन वन में गये थे। वहाँ तुम्हें एक नग्न दिगम्बर महामुनि मिले, किन्तु तुम सबने उनकी निन्दा की थी, अतः उसी के फलस्वरूप इस जन्म में तुम सबको कोढ़ हुआ। हे श्रीपाल! इसके बाद तुमने उन महामुनि को 'मलिन-मलिन' कहकर समुद्र में फेंक दिया था और थोड़ी देर बाद दया आ जाने से निकाल भी लिया था। यह उसी का फल है कि तुमको भी व्यापारियों ने समुद्र में गिरा दिया और तुम तिरकर बाहर निकल आये।

हे श्रीपाल! तुमने उन मुनि को 'चाण्डाल' भी कहा था, अतः तुम्हें भी चाण्डालों ने मिलकर 'चाण्डाल' कहा।

हे श्रीपाल! इसके बाद जब तुम्हारी पत्नी श्रीमती को तुम्हारे इन पापकार्यों का पता चला तो वह तुमसे विरक्त होकर जिनदीक्षा लेने के लिए तैयार हो गई, किन्तु तुमने शीघ्र उससे क्षमा-याचना की और उसी समय तुरन्त पत्नी के साथ ही मन्दिर जाकर वरदत्त मुनिराज से प्रायश्चित्त लिया और पुनः व्रत धारण किये। फलस्वरूप तुम दोनों शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग में इन्द्र-इन्द्राणी हुए।

हे श्रीपाल! इस प्रकार मैनासुन्दरी ने पूर्वजन्म में भी तुमको धर्मध्यान में लगाया था, अतः तुम्हारा उससे विशेष प्रेम है। हे श्रीपाल! पूर्वजन्म में भी तुमने सिद्धचक्र पूजा के द्वारा ही व्रतभंग का प्रायश्चित्त लिया था और इस जन्म में भी

सिद्धचक्र पूजा के प्रभाव से ही तुम कोढ़रहित होकर राजा हुए हो; अतः उसी में सदा अपना ध्यान लगाओ।''

मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर राजा श्रीपाल घर गया और पुनः उत्साहपूर्वक सिद्धचक्र की पूजा करने लगा। उसने अन्य भी बहुत लोगों को इस कार्य पर लगा दिया। लोग उसे 'धर्मराज' कहने लगे।

एक दिन राजा श्रीपाल ने कीचड़ में फँसे हुए वृद्ध हाथी को देखा। उसे देखकर उन्हें वैराग्य हो गया– अहो! इसी प्रकार से यह जीव भी सांसारिक विषयभोगों के कीचड़ में फँस कर नरकादि दुर्गतियों में जन्म-मरण कर रहा है; अतः इनसे विरक्त होकर आत्म-कल्याण के मार्ग में लगना चाहिए।

और श्रीपाल ने अपने पुत्र महीपाल को राज्य सौंप कर सुव्रताचार्य के पास निर्ग्रंथ मुनि-दीक्षा अंगीकार कर ली। मैनासुन्दरी आदि स्त्रियों ने भी आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीपाल मुनि ने घोर तपस्या के द्वारा समस्त घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। फिर कितने ही दिन समवसरण में विराजमान होकर लाखों भव्य जीवों को धर्म का उपदेश दिया और अन्त में शेष अघातिकर्मों का भी नाश करके परमपद मोक्ष को प्राप्त कर लिया। वे निरंजन सिद्ध हो गये। मैनासुन्दरी आर्यिका ने भी समाधिपूर्वक देहत्याग करके शुक्र स्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त किया। वहाँ से आकर उन्हें भी मनुष्य पर्याय से मोक्ष पद की प्राप्ति होगी। अन्य भी जो अनेक आर्यिकाएँ थीं, वे सभी यथायोग्य प्रथम स्वर्ग से षोडश स्वर्ग तक देव या देवी हुईं।

इस कथा से हमें प्रमाद छोड़कर विधिपूर्वक सिद्धचक्र पूजा में संलग्न होने की शिक्षा लेनी चाहिए। एक धर्मध्यान ही जीव को सर्वसुख प्रदान करता है।

श्रीपालचरित

महाकवि पं. दौलतराम कासलीवाल कृत

श्रीपालचरित

अथ श्रीपालचरित भाषा-प्रबन्ध लिख्यते—

(दोहा)

तीर्थंकर चौबीस जिन, धर्मराज के ईस।
गुण अनन्त मंडित प्रभु, नमत सक्र सत[1] सीस ॥ १ ॥
सकल विघन हर सर्म[2] कर, सिद्धचक्र अति सार।
ताकूं बंदूं भाव सूं, छोड़ि जगत भ्रमजाल ॥ २ ॥

(चौपई)

बंदूं त्रिविध गुरु गुण खान, राग रहित ज्ञानी अधिकान।
सप्तम गुणठाणे[3] मुनि गये, चढि के खिपक श्रेणी[4] सिध[5] भये ॥ ३ ॥
श्री जिन कमल थकी धुनि[6] खिरी, गणधर देव प्रकट विसतरी।
तीन जगत कूं अति सुखकार, सारद[7] बंदू भवदधि तार ॥ ४ ॥
सिरी जिन श्रुत गुरु नमि पांय, सिद्धचक्र नमिहूं हित लाय।
जा परसाद श्रीपाल नरेस, कहूं चरित्र महासुभ भेष ॥ ५ ॥
जंबु भरत आरज[8] उर आन, मगध देस स्वरथल[9] सम जान।
राजग्रही तामें पुर सही, श्रेणिक भूप सम्यकधर[10] कही ॥ ६ ॥
नारि चेलणा ता घर सती, सम्यक आदि गुणां कर जुती[11]।
ताके अभयकुंवर सुत नाम, सो अति रूप बुद्धि को धाम ॥ ७ ॥

---

१. सौ इन्द्र, २. सुख, ३. गुणस्थान में, ४. क्षपकश्रेणी, ५. सिद्ध, ६. ध्वनि, दिव्यध्वनि, ७. शारदा, सरस्वती, जिनवाणी, ८. आर्य क्षेत्र, ९. स्वर्ग, १०. सम्यग्दृष्टि, ११. गुणों से सहित

ऐसे राज करे नरराय, इक दिन सभा ठये सुख पाय।
ऐते आयो इक वनपाल, करी वीनती अति गुणमाल ॥ ८ ॥
भो नृप भाग[१२] तिहारे सही, वर्धमान जिन आये कही।
समोसरण विपुलाचल आय, तिष्ठे हरि[१३] सुर जै-जै लाय ॥ ९ ॥
इम सुणि राय महासुख लेय, सिंघपीठ[१४] तें उतर्‌यो जाय।
सात पैंड[१५] ता ओडी[१६] जाय, अपनो सीस नमायो राय ॥ १० ॥
पट भूषण[१७] माली कूं दिये, अष्ट द्रव्य अपने कर[१८] लिये।
पुर में आनन्द भेरी दिवाय, नगर लोक अरु बंधु मिलाय ॥ ११ ॥
बहुत उछाह[१९] शब्द जय लाय, पहुंचे समोसरन में आय।
तीन प्रदख्यणा[२०] दे नर ईस, गये मांहि[२१] निज नायो सीस ॥ १२ ॥
अष्ट दरब तें पूजे राय, फिर बहु भक्ति करी अधिकाय।
गौतमादि गणधर कूं नयो[२२], मनख-थान[२३] फिर बैठत भयो ॥ १३ ॥
तब जिनवर की वाणी खिरी, दिव्य ध्वनि अतिसै[२४] करि भरी।
पुन्य पाप मुनि श्रावक धर्म, तत्त्वादिक के भाखे मर्म ॥ १४ ॥
देव मनख तिर्यंच बहु जान, देस देस नर की भी वानि।
दिव्य ध्वनि अतिसै करि खिरी,भिन भिन जीव समझि चित धरी ॥ १५॥
जो संसै[२५] ता जीव उर होय, ताको ज्वाब[२६] परनमे सोय।
अद्‌भुत रचना जिन की बानि, श्रेणिक देखि हरष अति मान ॥ १६ ॥
फिरि श्रेणिक जिन कूं सिर नाय, ऐसे विनती करी सुभाय।
सीधचक्र पूजा करि सोय, को फल किन भवि पायो जोय ॥ १७ ॥
ताकी कथा सुनन को चाव, भाखो[२७] देव दया रस भाव।
तब जिन ध्वनि विन अक्षर खिरी, अर्थ गंभीर सकल रस भरी ॥ १८ ॥
सुणि गौतम गणधर मुनि ईस, भाखे कथन नवों निज सीस।
उर थिर आनि गुनो सब कथा, भाखत गणी[२८] भई विधि यथा ॥ १९ ॥

---

१२. भाग्य, १३. इन्द्र, १४. सिंहासन, १५. कदम, १६. उस ओर, उस तरफ, १७. वस्त्राभूषण, १८. हाथ, १९. उत्साह, २०. प्रदक्षिणा, २१. अन्दर, २२. नमस्कार किया, २३. मनुष्यों के कोठे में, २४. अतिशय, २५, संशय, २६. जवाब, समाधान, २७. कहो, २८. गणधर

जंबू दीप नाभि सम मेर,[२९] ताकी दक्षिण दिसा भ्रतहेर[३०]।
तामें षट खंड पंच अनार्ज,[३१] आरज एक तहां सुख कार्ज ॥ २० ॥
मालव देस उजेणी[३२] ग्राम, तहं जिनवर के अति सुभ धाम[३३]।
भोजन तहां मुनी नित करे, धर्म ध्यान जुत जन अनुसरे ॥ २१ ॥
सब जिन भक्त वाणी जिन भने, खान पान धन आदिक घने।
परसपरे सब ही जिन हिते, पुर कटुंब सुखी गुण किते ॥ २२ ॥
पुर में दीन नरा नहिं कोय, सब ही जीव पुन्याधिप[३४] सोय।
सब जन कोमल सज्जन भाय, मानों भोग भूमि जन आय ॥२३ ॥
इत्यादिक परजा[३५] सब सुखी, को विध कोय जीव नहीं दुखी।
ऐसो नग्र[३६] उजेणी[३७] धाम, प्रजापाल राय[३८] को नाम ॥२४ ॥
नारी सौभागसुन्दरि जान, कन्या दोय भई गुणखान।
स्वरसुन्दरि जेठी को नाम, मेणासुन्दरी गुण की धाम ॥ २५ ॥
रूप जिसो सुर कन्या एव, साहस बुद्धि धर्म नित सेव।
दोऊ सुता बुद्धि सुखकार, तब भणने[३९] कूं मेली सार ॥ २६ ॥
जोसी सिवसर्म इक दुज[४०] जानि, कन्या भणे बड़ी इस थान।
स्व प्रतिवेद भणी बहु सही, मिथ्या आगम पढ़ि मद भई ॥ २७ ॥
मेणासुंदरि छोटी सुता, महा बड़भागि रूप गुण जुता।
एक दिन जिनबंदन कूं गई, त्रिभवन तिलक चैताले सई ॥ २८ ॥
तहां जिन पूजे हरष बढ़ाय, फिरि वंदे जिन धर्म मुनिराय।
नय[४१]निज सीस ठई[४२]मुनि पास, धर्म सुण्यो सब सुख की रास ॥ २९ ॥
लये अणूव्रत कन्या सही, फिरि मुनि तें इम विनती ठई।
भो प्रभु धर्म जिनेस्वर सार, मोहि पढ़ावो सुख करतार ॥ ३० ॥
मुनि ढिंग कन्या पढ़े सुभाय, जिन मन रहसि जती बतलाय।
प्रथमानुयोग आदिक चव जोग, कन्या भणी महा सुख भोग ॥ ३१ ॥

---

२९. सुमेरु पर्वत, ३०. भरत क्षेत्र, ३१. अनार्य, म्लेच्छ, ३२. उज्जयिनी, ३३. मन्दिर, ३४. पुण्यवान, ३५. प्रजा, ३६. नगर, ३७. उज्जयिनी, ३८. राजा, ३९. पढ़ने के लिए, ४०. द्विज, ब्राह्मण, ४१. झुकाकर, ४२. बैठी

धर्म अधर्म रूप लखि लियो, जान्यो तत्त्व भेद जिन चयो[४३]।
देव धर्म गुरु दिढ़ता लाय, सम्यक् जुत अणुव्रत्त धराय॥ ३२॥
या जग संग उच्च तें सही, क्या क्या गुण उपजे नहीं कही।
नीच संग तें दूषण कोय, कौन कौन उपजे नहीं सोय॥ ३३॥
या विधि कन्या दोऊ सार, नाना कला पढ़ी सुखकार।
इक दिन बड़ी सुता कूं सही, वंछित[४४] वर जांचो नृप कही॥ ३४॥
कन्या तब भाखी[४५] सुनि तात, अहिछत नग्र राय सुभ गात[४६]।
वैरदमान नामे है सही, तासूँ व्याह करूं इम कही॥ ३५॥
तब राजा बहु ठानि उछाह[४७], कियो बड़ी कन्या को ब्याह।
मेणासुंदरी इक दिन सही, पूजे जिन गंधोदक लही॥ ३६॥
तात पास लाई तब सुता, गंधोदक सिर लायो पिता।
धारि सनेह सुता सूं कही, मांगो वर मनवंछित कही॥ ३७॥
तब यह कन्या सील की खानि, तात थकी इम वचन जु ठानि।
अहो तात गारी[४८] किम देय, मन वंछित वर बेस्या लेय॥ ३८॥
अथवा नारि कुसीली होय, सो वंछित वर मांगे जोय।
व्रत्त शील कुल ऊंची नार, सो वर कबहुँ न जांचे धार॥ ३९॥
मात पिता ताकूं परणाय, सोही वर यह नीति कहाय।
पीछे सुभ अरु असुभ सु जोय, कर्म उदैसाहै सो होय॥ ४०॥
सुख दुख होय भाग तें सही, ताकूं मेट सके नहीं कोइ।
तातें पिता सला[४९] तुम होय, ताही कूं परणाबो[५०] जोय॥ ४१॥
तात वचन सुन मन कोपियो[५१], मेरे वचन सुता खंडियो[५२]।
थाप्यो कर्म आपनो जानि, सो अब देहु महा दुख थान॥ ४२॥
महानिंद कोढी धनहीन, जानि दलिद्री सुरती दीन।
ऐसो वर लखि ब्याहूं सही, राखी मन काहू नहिं कही॥ ४३॥
इक दिन राय गयो वन थान, क्रीडा करत फिरत हित मान।
ताही वन श्रीपाल नरेस, आ निकसे पलट्यो तन भेष॥ ४४॥

---

४३. जिनेन्द्र-कथित, ४४. इच्छित, ४५. कही, ४६. सुन्दर शरीर वाला, ४७. उत्साह, ४८. गाली, ४९. सलाह, ५०. विवाह करो, ५१. क्रोधित हुआ, ५२. खण्डित किया

महा कोढ ताके तन मांहि, लार[५३] सात सै सेवक थांहि।
सो भी सर्व कोढ करि सही, वास दुरगंध धार तन कही ॥ ४५ ॥
छत्र चमर सिंघासण लार, राज त्रजु ज बन्यो सब सार।
ये तन वास दुरगंध अपार, फैल रही सब बन के थान ॥ ४६ ॥
ऐसे श्रीपाल लखि राय, प्रजापाल जु हरष उपाय।
मंत्रिन सूं राजा इम कही, यह मेणासुन्दरि वर सही ॥ ४७ ॥
याकूं राखो जागा[५४] बनाय, तब मंत्री बहु मनै[५५] कराय।
राय न मानी कांहू बात, कीनो हठ मूरख हरषात ॥ ४८ ॥
राय हुकम तो वन में जानि, जागां बणाई लखि सुभ थानि।
राय जाय कन्या सूं कही, तो[५६] वर कोढी आन्यो सही ॥ ४९ ॥
कन्या कही सुनो मो पिता, सुभ अरु असुभ कर्म ते हुता।
जो जो सुख होनो सो होय, ताकूं मेट सकै नहिं कोय ॥ ५० ॥
ऐसे धीर वीर वच दियौ, सब जन सुनि के अचरज लयो।
सब जन कन्या की थुति[५७] करे, कन्या धन्य धन्य सब उचरे ॥ ५१ ॥
कोढी पति पायो है सही, तो भी मन चिंता न लही।
अंतेपुर सब ही नर नारि, हा हा मुख तें वचन उचारि ॥ ५२ ॥
सब जन मिलि विनती करवाहि, भो नृप कोढ़ी कूं न विवाहि।
मेणासुन्दरि रूप जिहाज, कोढी कूं न देहि महाराज ॥ ५३ ॥
राय हठी मानी नहिं कोय, मंत्री फिर वच भाखी[५८] सोय।
कोढी कूं न कन्या दे राय, तू बुधिवान[५९] देखि मन लाय ॥ ५४ ॥
मूरख राय तबै इम कही, भो मंत्री यह नृप है सही।
छत्र चमर सिंघासन जोय, राज चिह्न देखत है सोय ॥ ५५ ॥
यह वर जोग्य सुता कूं सही, मैं परणाऊं[६०] निस्चै[६१] कही।
वरज्यो सति[६२]कछु समझ्यो नांहि, हम कहि सबके वचन नसाय ॥५६॥
आय विवाह तणी विधि करी, कन्या रूप दसा अति धरी।
वर जुत आय पिता के पास, नमस्कार कीनो गुण रास ॥ ५७ ॥

---

५३. साथ में, ५४. जगह, ५५. मना, इनकार, ५६. तेरा, ५७. स्तुति, प्रशंसा, ५८. कहे, ५९. बुद्धिमान, ६०. विवाह करूँगा, ६१. निश्चय, अवश्य, ६२. मना करने पर भी

तब नृप मैणासुन्दरी जोय, रूप थकी रति सी अवलोय।
देख्यो वर कोढ़ि तनहीन, मन पछतावो पति लखि कीन ॥ ५८ ॥
आप निंद्यो आपन कूं सही, मैं मतिहीण यहु कहा वही।
क्रोध थकी मन नांहि विचार, कोढी कहा कहा वर नार[६३] ॥ ५९ ॥
जानि पूछि[६४] मैं कूप[६५] मँझार, डारि दई कन्या गुण सार।
मो सो हठी नहीं सठ कोय, फिरि मन राजा निश्चै जोय ॥ ६० ॥
कन्या कही सत्य सो बात, कर्म करे सो होय विख्यात।
मैं तो निमित मात्र करतार, कारज होय कर्म अनुसार ॥ ६१ ॥
पुन्य पाप जो जीव के होय, ताकूं मेट सके नहि कोय।
यह अब मो मन निश्चै भयो, इम लखि राय सोच[६६]तजि दियो ॥ ६२ ॥
प्रजापाल धारि मन तोष, निज उर को छांड्यो सब दोष।
वनथलि महल उतंग बनाय, मंडित कनक रतन जडवाय ॥ ६३ ॥
तहां रहै श्रीपाल नरेस, मैणासुन्दरि नारि सुभेस।
दासी दास नगर बहु दये, ढोल्यो महल और घर ढये ॥ ६४ ॥
तिन में सब कोढी थिति करे, पूरव कर्म किये फल भरे।
अब वह मेणासुन्दरि नारि, भक्ति करे पति की चित धारि ॥ ६५ ॥
पूंछे कोढ आप पट[६७] लेय, नांहि गलांन[६८] करे मन जेय।
तव लखि श्रीपाल जी कही, सुंदरी तुम घरि तिष्टो सही ॥ ६६ ॥
जब यह पाप उदै मिट जाय, तव हम लेंगे तुरत बुलाय।
मो तन गंध महा दुखदाय, तातें जीव मरे भय खाय ॥ ६७ ॥
तातें तुम अपने थल रहो, वचन हमारो सत्य सरदहो।
मैणासुन्दरि सुणि इम कही, नाथ सुनो मो विनती सही ॥ ६८ ॥
तुम बिन और धाम मोही बनी[६९],तुम बिन और नहीं को धनी।
एक घड़ी जो तुम बिन जाय, सो वेदन मो नांहि सुहाय ॥ ६९ ॥
तुम तन ही मेरे शुभ काज, तुम बिन काम नहीं सुरराज।
तातें मौं तुम रहूँ हजूरी, एक पल मोहि करो न दूरी ॥ ७० ॥

---

६३. कहाँ तो वह कोढ़ी पुरुष और कहाँ यह श्रेष्ठ नारी, ६४. जान, बूझकर, ६५. कुंआ, ६६. शोक, दुःख, ६७. वस्त्र, ६८. ग्लानि, घृणा, ६९. वन

ऐसे राय वचन सुनि रानि, मन में श्रीपाल सुख धार।
सुख करि नारि सहित इस थांनि, तिष्टत कर्म उदय जिम आनि ॥ ७१ ॥
कहा श्रीपाल कोढ जुत राय, कहा मैणासुन्दरी सुखदाय।
कर्म उदै इन भयो मिलाप, पुन्य पाप जिव भुगते आप ॥ ७२ ॥
ऐसो जानि बुधी धरी सोय, साचो धर्म पाप मल खोय।
ज्यौं दुख जाय होय सुख सही, फेरि अनुक्रम शिव विधि[७०] लही ॥ ७३ ॥
इन्द्र धरणेन्द्र खगेन्द्र सार, पावे पद धर्म तें निरधार।
धर्म बिना जिय कूं जग मांही, सुख देने को समरथ नांहि ॥ ७४ ॥
तप संजम पूजा शुभ दान, इत्यादिक किरिया सुख थान।
सो सब धर्म कारने जोय, धर्म दया लखि और न कोय ॥ ७५ ॥
धर्म आपनो है सुध भाव, सो अब करो भलो यह दाव[७१]।
ऐसो औसर फेर न होय, तातें धर्म भवि तजो न कोय ॥ ७६ ॥
धर्म बिना जीव भमें संसार, पाए दुख तिनको नहीं पार।
जेते दुख सब अघ[७२] तें होय, धर्म थकी सुख ही सुख जोय ॥ ७७ ॥
ऐसो जानि धर्म दिढ करो, भूलि प्रमाद न हिरदै धरो।
अब सुनि मेणा सुन्दरि कथा, ता सुणि भवि[७३] लागो सुभ पथा ॥ ७८ ॥
इक दिन मैणां सुन्दरि जांण, भरता[७४] सहित गई जिन थान।
तहाँ जाय जिन पूजे पांय, जाय सभा मुनि भक्ति कराय ॥ ७९ ॥
फिरि मुनि कूं इम पृच्छा करी, अहो नाथ विनती सुन खरी।
मेरे पिता परीक्षा काज, कोढी कूं व्याही महाराज ॥ ८० ॥
मो पति कोढ जाय अक[७५] नांय, तब मुनि भाषी सुनि सुखदाय।
भो पुत्री तो पति पुन्यवान, होनहार मण्डलेश्वर जान ॥ ८१ ॥
महा विभूति भोगता होय, है कोटिभट अति बल जोय।
चरम सरीरी सजन खान, भो पुत्री मन सोच न आन ॥ ८२ ॥
मैणां सुन्दरि सुणि मुनि बैन, उर हरषी अति पायो चैन।
मुनि वच सत्य असत्य न होय, ऐसी दिठ[७६] अपने मन जोय ॥ ८३ ॥

---

७०. मोक्षमार्ग, ७१. अवसर, ७२. पाप, ७३. भव्य जीव, ७४. भर्ता, पति, ७५. अथवा, या, ७६. दृष्टि, श्रद्धा

मेरु डिगे रवि पच्छम[७७] उगे, षष्टम् काल जीव शिव पगे।
वह्नी[७८] सीत, दया बिन धर्म, एते कबहू उपजे कर्म ॥ ८४ ॥
जो उपजे तो उपजो सही, मुनिवच झूठ होय नहिं कही।
फिरि मुनि कूं तिय नय निज सीस, भाषत फिर सुनो मुनि ईस ॥ ८५ ॥
भो मुनि जो विधि व्याधि नसाय, सो उपदेश कहो हितदाय।
तब मुनि कहे पाप दुख दानि, ता मेटन कूं धर्म सु जानि ॥ ८६ ॥
पूर्व उपार्जित जे अघ[७९] होय, ताके उदय महा दुख जोय।
सो अघ उदय नास के काज, सेवो धर्म दया सुख साज ॥ ८७ ॥
इनकी व्याधि निवारण काज, सेवो धर्म कही मुनिराज।
धर्म थकी सब व्याधि नसाय, ज्यों रवि उदय सकल तम जाय ॥ ८८ ॥
त्यौं यह धर्म करे अघनाश, दे सुख इंद्रादिक मुनि भास[८०]।
धर्म थकी जिव सर्वकर्म छारि, होय मुक्ति निश्चै इम धारि ॥ ८९ ॥
धर्म कलप तरु[८१] वंछित देय, ता तरु मूल सम्यक् गिनि लेय[८२]।
पेड़ ज्ञान चारित लखि डार, पत्र दान पुण्य भक्ति सु सार ॥ ९० ॥
ता वृछ के जिन आज्ञा वाड़ि, सेवे बुधि पंछी[८३] अघ ताड़ि।
तातें पुत्री धर्म इलाज, सेवो और सकल तजि काज ॥ ९१ ॥
पहले तो सम्यक पद पाय, फिरि श्रावक अनुव्रत्त लिवाय।
सिद्धचक्र पूजा विधि करो, सकल चित्त परमाद जु हरो ॥ ९२ ॥
त्यों ही या ढिंग तै[८४] करवाय, भगवत चरणोदिक[८५] नित लाय।
याके तन तुम सींचो सही, तातें सकल व्याधि खय थही ॥ ९३ ॥
या परलोक विषैं सुख होय, ऐसे मुनि के वच सुनि सोय।
मैना सुन्दरि मुनि कूं नयी[८६], हस्त जोड़ि विनती इम ठई ॥ ९४ ॥
हे मुनिनाथ सम्यक व्रत सोय, ठानि[८७] दया इनकूं द्यो मोय।
तव मुनि सिरीपाल भवि[८८] जानि, दीये व्रत अणु सम्यक् ठांनि ॥ ९७ ॥'

---

७७. पश्चिम दिशा में, ७८. अग्नि, ७९. पाप, ८०. कहा है, ८१. कल्प वृक्ष, ८२. उस वृक्ष का मूल सम्यग्दर्शन समझो, ८३. ज्ञानीजन रूपी पक्षी, ८४. ढंग से, अच्छी तरह, ८५. गन्धोदक, ८६. झुककर नमस्कार किया, ८७. करके, ८८. भव्य जीव

*छन्द ९५ एवं ९६ मूल प्रति में ही नहीं मिलते।

मैणा सुन्दरि सूं मुनि कही, इन श्रीपाल राय जुत सही।
सुनि हितकारी भाषूं तोहि, व्रत अष्टानिक विधि सुनि सोहि ॥ ९८ ॥
फागुन कार्तिक मास अषाढ, सुधि[८९] आठम[९०] तें पून्यू[९१] सार।
आठ दिवस वसु द्रव्य जिन सेय, गंधोदिक भरता कूं देय ॥ ९९ ॥
शक्ति समान करो तप सही, या विधि जाप पंचाक्षर कही।
'असि आउसा' नित करि जाप, भरता सहित जपो तजि पाप ॥ १०० ॥
त्यों वसु[९२] दिन में या तन सोय, कामदेव सो अतिसुध[९३] होय।
सिद्धचक्र पूजा परभाव, होय महासुख सब दुःख जाय ॥ १०१ ॥
या विधि सुनि दंपति मुनि बैन, मनमांहि अति पायो चैन।
बारबार मुनि कूं सिर नाय, दंपति अपने मंदिर आय ॥ १०२ ॥
पीछे दिवस अठाईं माँहि, सीधचक्र की पूज कराय।
अष्टद्रव्य पूजे जिन पाय, गंधोदिक लाई हरषाय ॥ १०३ ॥
श्रीपाल आदिक सत सात[९४], कोढ़ सहित पीड़ा बहु गात।
तिन के रोग नासने काज, गंधोदिक दीनो सुख : . . ॥ १०४ ॥

(दोहा)

आठै[९५] की पूजा विषैं, लग्यो द्रव्य जो कोय।
तातें नवमी के दिना, लखो दशगुणो जोय ॥ १०५ ॥
नवमी तें दशमीं दिना, लखो दशगुणो माल।
सीधचक्र पूजे सही, महागुणा की माल ॥ १०६ ॥
दसिमी तें ग्यारस दिना, माल दशगुणो लाय।
ऐसे पून्यू दिवस लूं, दश दश गुणो वधाय ॥ १०७ ॥
सीधचक्र यौ पूजियौ, दश दश गुणो वधाय।
गन्धोदक निति लाय के, कोढ़िन कूं दे ल्याव ॥ १०८ ॥
भरता आदिक सात सौं, कोढ़ी अतिदुखकार।
सीधचक्र पूजन थकी, गयो कोढ़ निरधार ॥ १०९ ॥

---

८९. सुदी, शुक्ल पक्ष, ९०. अष्टमी, ९१. पूर्णिमा, ९२. आठ, ९३. अत्यन्त शुद्ध, ९४. सात सौ, ९५. अष्टमी

श्रीपाल तन काम-सो[६६], भयो व्याधि बिन सोय।
तनरक्षक थे सात सै, ते सब निर्मल होय॥ ११०॥
यह जिनपूजा कल्पतरु, वंछित फल दातार।
जुगभव[६७] में सुखकारणी, लखि दंपति हितधार॥ १११॥
सीधचक्र पूजा अबै, करै निरंतर सोय।
भाव सहित दंपति सही, पुन्य उपारजे दोय॥ ११२॥
गुरु जिनपूजा दान शुभ, श्रवन पाठ जिनवानि।
इत्यादिक शुभ करत है, श्रीपाल गुण खान॥ ११३॥
निसिदिन सुध भावन थकी[६८], जपे पंच नवकार।
सामायक त्रयकाल[६९] करी, वास[१००] च्यार निरधार॥ ११४॥
पोसा[१] जुत आरंभ बिन, करे वास मन लाय।
मल पचीस[२] बिन समकिती, पाले मन वच काय॥ ११५॥
इत्यादिक निर्मल क्रिया, पाले सुध आचार।
मुकति धाम वांछे सदा, साधे जिनधर्म सार॥ ११६॥
श्रीपाल जुत सुन्दरी, भोगे दंपति भोग।
सुख तिष्टे पुन्य संग तें, खोय सकल तन रोग॥ ११७॥

(पद्धरि)

इक दिन श्रीपाल की मात सोय, सुत की सुध पाई कष्ट खोय।
तब मोह वसी चित नेह लाय, सुत पास चली अति हर्ष पाय॥ ११८॥
श्रीपाल मात कूं लखी आत[३], जुत नारि भूप सन्मुख सु जात।
श्रीपाल मात क्रम[४] नयो सु जाय, तब दी असीस[५] माता सुभाय॥ ११९॥
भो सुत मंडलेश्वर लच्छी[६] पाय, फिरि मैणा सुंदरी पाय लाय।
तब देखी बहु दीनी असीस, तू हो सुत के पट नारी ईस॥ १२०॥
या विधि असीस सुत नारी लेय, मंदिर[७] प्रवेश कीयो गुणेय।
माता आगम लखि पुत्र नारी[८], दंपति बहु मन में हर्ष धारि॥ १२१॥

---

६६. कामदेव के समान, ६७. दोनों भव में, इस जन्म में भी और अगले जन्म में भी, ६८. शुद्ध भावों के द्वारा, ६९. तीनों काल, प्रातः, मध्याह्न एवं सायं, १००. उपवास,
१. प्रोषध, २. पच्चीस मल, (८ शंकादि दोष + ८ मद + ३ मूढ़ता + ६ अनायतन), ३. आते हुए देखा, ४. चरण, ५. आशीर्वाद, ६. लक्ष्मी, ७. महल, ८. पुत्रवधू

एक दिनि सासूं ढिंग आय नारि, सासू कूं विनई वच उचारि।
मोकूं असीस अति दइ वधाय, ताको कारण कहो दया जु लाय ॥ १२२ ॥
तब माता कहि सुनि पुत्र नारि, श्रीपाल इसो ही मति सु धार।
महाराज पुत्र बलवान सोय, भाखूं सुनि उतपति नाथ तोय ॥ १२३ ॥
चम्पानगरी सुभ अंगदेश, सीधार्थ[९] नाम तीहा[१०] नरेश।
ताकी हू कमलप्रभा सु नारि, यह सुत मेरे उपज्यो सु धारि ॥ १२४ ॥
जब दोय बरस को भयो जु बाल, तब सीधार्थ नृप कियो सुकाल।[११]
तब सब मंत्री मिलि मतो सु लाय, नृप श्रीपाल कीयो सुभाय ॥ १२५ ॥
बहु राज कियो श्रीपाल जानि, तब इनके काके[१२] दगो[१३] सु ठांनि।
राज खोसी[१४] लीयो सुभाय, सुनि वीरदमन तसु नाम थाय ॥ १२६ ॥
सठ सुत मारन को करे इलाज, तब मंत्र्यां[१५] मोकूं[१६] कह्यो काज।
देसांतर तब बहु पुत्र लाय, तब उदै अशुभ में अशुभ थाय ॥ १२७ ॥
श्रीपाल तणे तब कोढ़ होय, अति वासे[१७] सबकूं दुःख जोय।
याके तनरक्षक नेह जोर[१८], सब याकी नांहि भक्ति छोर ॥ १२८ ॥
तब उनहू के कर्म उदे सु आय, सातु से[१९] भट कोढ़ि थाय।
तन में गंध विकट[२०] भइ सु जान। ताके दुख जन छोड़े सुथान ॥ १२९ ॥

(सोरठा)

कहन सके को नांहि, छोड़े सब उस थान कूं।
विकट दुर्गन्ध तन मांहि, तब इनही मन चीतई[२१] ॥ १३० ॥
तन की वास अपार, सब ही कूं दुखकार है।
तातें जोग[२२] न धार, ग्राम विषैं रहनो नहीं ॥ १३१ ॥

(चौपई)

तातैं इतकूं आवन भयो, तेरो निमत[२३] व्याह[२४] को थयो।
अब तो पुन्य प्रसादे सही, तन की व्याधि हरी सब नहीं ॥ १३२ ॥

---

९. सिद्धार्थ, १०. वहाँ का, ११. उत्सव, १२. चाचा, १३. धोखा, १४. छीनना, १५. मंत्रियों ने, १६. मुझसे, १७. दुर्गंध से, १८. स्नेह के वशीभूत होने से, १९. सात सौ सभी, २०. भयंकर, २१. सोचा, २२. योग, संन्यास, दीक्षा, २३. निमित्त, २४. विवाह

है कोढ़िभड रूप अपार, राजन के सब ही गुणधार।
अब मंडलेश्वर को पद पाय, करसी[२५] राज सकल सुखदाय ॥ १३३ ॥
आठ हजार नारि इस जोय, ता सोई[२६] तू पटराणी होय।
मैणा सुंदरी इम वच जान, मात वचन तें हरष जु ठानि ॥ १३४ ॥
इक दिन प्रजापाल किम जाय, देखे दंपति सुंदर काय।
अपन महल सीस सुख करे, देखि र इम मन चिंता धरे ॥ १३५ ॥
जानी सुता पुरष अन यो, कोढ़ि भरता कूं तजि दियो।
ऐसी भ्रांति राय के भई, राय सचीत[२७] दसा अति लही ॥ १३६ ॥
मैणां सुन्दरी मामो[२८] सोय, राय सचीत दसा कूं जोय[२९]।
पूछी अकसमात नरराय, चिंता किम उपजी बतलाय ॥ १३७ ॥
राय तबै सब चित की कथा, बोली कही सांची थी जिथा[३०]।
तब इन कही राय सुनि मोहि, महासती सुंदरी है सोहि ॥ १३८ ॥
महासती अष्टानिक मांय, व्रत्त कीयो अति भाव लगाय।
ताके पुन्य प्रभावे सोय, कोढ़ नासि सुंदर तन होय ॥ १३९ ॥
सो यह व्रत्त प्रभावे जानि, वचन सुनी राजा सुख मानि।
मिलने श्रीपाल तें सही, भूपति चाल्यो अति हरषही ॥ १४० ॥
मंदिर आवत भूप कूं जोय, श्रीपाल नारी जुत होय।
सनमुखि जाय भूप कूं नयो[३१], राय नेह करि मिलते भयो ॥ १४१ ॥
पुत्री तें फिरि नृप इम कही, तू जिन आगम वेत्ता सही।
जो सुख दुःख जीव कूं होय, पूर्व उपार्जित है सब सोय ॥ १४२ ॥
सो अब मैं परगट लखि लिए, अब मैं सब मिथ्या तजि दिए।
सीधचक्र पूजा विधि सोय, जा विधि तें सुधि कीनी होय ॥ १४३ ॥
सो विध व्रत्त हमें करवाय, राय कही धर्म दिढ़ता लाय।
जो जमधर मुनी गुरु तुम जानि, सो ही गुरु मेरे सत्य मान ॥ १४४ ॥
वै ही तुम आराधन जोग्य, यो ही धर्म सुख साधनि योग्य।
धर्म जिनेश्वर जग में सार, या धर्म बिन दुख लहे अपार ॥ १४५ ॥

---

२५. करेगा, २६. उनके ऊपर, २७. दुःखी, २८. मामा, २९. देखकर, ३०. जैसी थी, ३१. नमस्कार किया

भो कन्या जो मैं बिन ज्ञान, तोकूं दुख दीयो वच ठान।
सो अपराध खिमा करि मोय, या विधि वचन कहै नृप सोय ॥ १४६ ॥
बहुविधि सुता संतोषी राय, फिरि श्रीपाल तणी थुति लाय।
भो श्रीपाल महापुण्यवान, मेरे जो जो हैं शुभ थान ॥ १४७ ॥
रतन ग्राम आदिक सब जानि, तुम ही के हैं ल्यो[३२] हित मानि।
तब श्रीपाल वचन सुनि कही, मो धन ग्राम न चहिए सही ॥ १४८ ॥
यह पुन्यवान न वांछा कोय, तोहू राय महादिढ़ जोय।
ग्राम रतन आदिक बहु दए, फेरि महाहितदा[३३] वच ठए ॥ १४९ ॥
यह सब राज तिहारो सही, बार बार परसंसा[३४] कही।
जिनमत महा धारि दिढ़ राय, बहु सूसरषा[३५] करि घरि आय ॥ १५० ॥
अब सुख तिष्ठत नृप श्रीपाल, सेवे धर्म महागुणमाल।
धर्मविपाक दियो तब आय, कोढ़ रोग सबको खय पाय ॥ १५१ ॥
धर्म कल्पवृछ[३६] वंछित[३७] देय, राजपुत्र धन भोग सु जेय।
जे संसार भोग नहिं चहै, सो धर्म तें सिवमारग लहै ॥ १५२ ॥
सांचो धर्म देय सब सोय, ताकूं भव्य तजो मति कोय।
ऐसे धर्म सहित श्रीपाल, दान थकी जस[३८] लयो विसाल ॥ १५३ ॥
देय दान वंछित श्रीपाल, बंदीजन भाषे गुणमाल।
गीत कवित्त करे कवि कोय, राय जमाई[३९] भाषत सोय ॥ १५४ ॥
नाम 'जंवाई' ले विरदाय, बाप[४०] तणो नहीं नाम कहाय।
ऐसे सुनि श्रीपाल दुखेय, उतर्‌यो वदन सोचकरि जेय ॥ १५५ ॥
मैणां सुंदरि पूछत सही, अहो नाथ चिन्ता किम लही।
तब श्रीपाल कही सच बात, जोग्य नहीं रहनो दुखदात ॥ १५६ ॥
कहे जंवाई सब जन मोय, बाप नाम जाणे नहीं कोय।
नीतिशास्त्र में ऐसे कही, सुसर द्रव्य खानो नहीं सही ॥ १५७ ॥
जो धन सुसर खात तन धरे, ताको जस पंडित नहीं करे।
अपजस होय जगत में जानि, पिता नाम की दीखत हानि ॥ १५८ ॥

---

३२. लो, लीजिए, ३३. बहुत हितकारी, ३४. प्रशंसा, ३५. सुश्रूषा, सेवा, ३६. धर्मरूपी कल्पवृक्ष, ३७. इच्छित, ३८. यश, ३९. जँवाई, दामाद, ४०. पिता

तातें रहनो जोग्य न सही, देसान्तरि अब जाने कही।
अपने भुजबल द्रव्य कुमाय[४१], प्रगट करूँ पुरसत[४२] अधिकाय ॥ १५९ ॥
ल्यावूं द्रव्य महाजस सही, मैणा सुन्दरि तब इम कही।
नाथ वियोग तिहारो सोय, समरथ पलक सहन नकु कोय ॥ १६० ॥
मैं भी चलूँ तिहारे लार, सुणी कोढ़ि भट वचन उचार।
भो प्रिय तो जुत मोकूं राय, जान न देय पैंड[४३] चित लाय ॥ १६१ ॥
तातें तुम तिष्ठो[४४] इम थान, तब सुंदरि इम वचन बखान।
जो कबहूं मोहि लार[४५] लहो, तो मरजाद आन की कहो ॥ १६२ ॥
केते[४६] दिन में आवो सही, तब श्रीपाल वचन इम कही।
बरस बारहै द्रव्य कुमाय[४७], आऊंगो यह दिढ़ मन लाय ॥ १६३ ॥
मैंणां सुन्दरि भाषी देव, जो मरजाद[४८] उलंघे राव।
द्वादस वर्ष विषें नहीं आय, तो हूं[४९] ठीक अर्जिका थाय ॥ १६४ ॥
करि कबूल[५०] श्रीपाल नरेस, चालन कूं उमगे परदेस।
तब मैंणां सुंदरि इम कही, मेरी अरज सुनो प्रभु सही ॥१६५ ॥
यो जिनधर्म महासुखदाय, ऊधर भव भटकत नहीं पाय।
सो यह भूलि न भूलो देव, सुख दुख विषैं करो जिनसेव ॥ १६६ ॥
जिनमत विषें रहो दिढ़ सही, इत्यादिक धर्मशिक्षा कही।
माता कूं निति आदि[५१] कराय, मोकूं नहीं बिसरो हित लाय ॥ १६७ ॥
बारह बरस तणी मरजाद, ताकूं रक्खोगे प्रभु याद।
इत्यादिक विनति करी घनी[५२], कोडीभट सब हिरदे धरी ॥ १६८ ॥
कोडीभट माता पै जाय, दियो समोध[५३] महासुखदाय।
मैणां सुंदरी अपनी नारि, भक्ति निमत्त[५४] मात पै धारि ॥ १६९ ॥
सुभट सात सै[५५] भी ह्यां[५६] छारि, एकाएक चले निरधारि।
देस नगर वन पर्वत लंघि[५७], रहे उद्यान शिखर बिन संगि ॥ १७० ॥
चालत अनुक्रम तैं तहाँ आय, भृगुकच्छप पाटण पहुँचाय।
तहाँ धवल इक सेठ महान, स्वारथवान बहुत धनवान ॥ १७१ ॥

---

४१. कमाकर, ४२. पुरुषत्व, ४३. एक कदम भी, ४४. रुको, ४५. साथ में, ४६. कितने, ४७. कमाकर, ४८. मर्यादा, सीमा, ४९. मैं, ५०. स्वीकार, ५१. याद, स्मरण, ५२. बहुत, ५३. सम्बोधन, ५४. के लिए, ५५. सात सौ, ५६. यहाँ छोड़कर, ५७. लांघकर

और जिहाज पंच सै[५८] लार, बहुत महाजन धन के धार।
सो जुत धवल सेठ दधि तीर[५९], तिनकी गेल[६०] सुभट अतिधीर ॥ १७२ ॥
सो यह झाज पांच सै सही, ते दधि मांहि अटकि बहु रही।
तब किन[६१] कही इहाँ सुर कोय, थाँभी जिहाज तजै नहीं सोय ॥ १७३ ॥
तारुण रूप गुणी बुधिवान, ऐसे नर कूं द्यो बल[६२] थान।
तो यह झाज तजे[६३] सुर कही, सुनि के धवल सेठ इम चही ॥ १७४ ॥
मनख[६४] कहो किम मार्‌यो जाय, पै अति लोभ पर्‌यो यो आय।
सेठ कही ल्यावो जिन कोय, देऊँ द्रव्य मांगे नर सोय ॥ १७५ ॥
पटण[६५] मांहि फिरै नहीं मिल्यौ, तब नर ढूँढन कूं वन चल्यो।
हेरत[६६] वन चहुं दिसि[६७] चर[६८] फिरे, जो दिष्टी पुरष गुणी को परे ॥ १७६ ॥
अब सुन कोडिभट श्रीपाल, इस ही वन आयो गुणमाल।
खेद पाय[६९] सूतो[७०] वन मांहि, निरभे[७१] महाबली अधिकाय ॥ १७७ ॥
हेरत धवल सेठ चर[७२] आय, सूतो श्रीपाल दिखलाय।
महागुणी अति रूप विसाल, ऐसो पुरुष देखि ततकाल ॥ १७८ ॥
सबही इन ढिग[७३] आये सही, इनको नृप लखि कछु अनकही।
वाणीक[७४] सर्व उरीजा ठए, कोडिभट फिरि जागत भए ॥ १७९ ॥
तब इन आय वीनती करे, धवल सेठ लूं चालो खरे।
तब ए धीर चले इन लार[७५], देखि वणिक इन रूप अपार ॥ १८० ॥
हाहाकार करे मन मोहि, फिर पुरलोक देखि पुर ठांहि।
सब ही हा हा सबद कराय, सेठ धवल ढिंगि[७६] पहुँचे जाय ॥ १८१ ॥
देखि सेठ गुण रूप अपार, चाह जोगि पायो नर सार।
कोडिभट कूं सब जन जोय, सोचित[७७] नैन नीर जुत होय ॥ १८२ ॥
तब लखि श्रीपाल सब लोय, चिंतावान दया जुत होय।
कोऊ जन कूं पूछी सही, तिहि नर सकल हकीकत[७८] कही ॥ १८३ ॥

---

५८. पाँच सौ, ५९. किनारा, ६०. मार्ग, ६१. किसी ने, ६२. बलि, ६३. जहाज, ६४. मनुष्य, ६५. नगर, ६६. ढूंढने, ६७. चारों दिशाओं में, ६८. नौकर, सेवक, ६९. थककर, ७०. सो रहा था, ७१. निर्भय, ७२. सेवक, ७३. पास में, ७४. वणिक, बनिया, ७५. के साथ, ७६. के पास, ७७. शोकयुक्त होकर, ७८. असलियत

सुनि श्रीपाल निसंकित होय, मन मांहि इम चिन्तत सोय।
देखे कहा कहा कर्म करेय, मौन धारि तिनमें संचरेय[७९] ॥ १८४ ॥
इनकूं पट भूषन[८०] पहराय, कियो तिलक पूजे इन पाँय[८१]।
फेरि चले मारन के काज, ल्याए जिहाज पासि सेठराज ॥ १८५ ॥
कोटीभट अरु रूप अपार, फिरि फहरे[८२] पटभूषण[८३] सार।
सीस तिलक सोभे इम राय, मानूं जस लछमी वर[८४] आय ॥ १८६ ॥
सेठ कही उस थानक जाय, भो दधि रक्षक स्वर[८५] सुनि भाय।
तेरो भक्ष लहै नर एह, झाज[८६] हमारी सब तजि देह ॥ १८७ ॥
तो भी महाधीर श्रीपाल, देखे कर्म चिह्न गुणमाल।
चाहे तो सबकूं जय लहे, पै मन में कौतिक धरि जैहे ॥ १८८ ॥
देखे ख्याल[८७] कछू नहीं कहै, सेठ तबै मारन कूं चहै।
कोडिभट कूं सेठ जे कही, तोकूं भक्ष देत है सही ॥ १८९ ॥
तब बोले श्रीपाल नरेस, सेठ सुनो मेरे सुख भेस।
काम कहा मोकूं तुम कहो, अक[८८] मेरो तन ही तुम चहो ॥ १९० ॥
सेठ कही अटकी हम झाज, मारत हे स्वर कू बल काज[८९]।
तब हम झाज[९०] चलेंगी सही, ऐसे वचन सेठ ने कही ॥ १९१ ॥
तब श्रीपाल कहे हित लाय, सेठ सुनो मो वच सुखदाय।
जो मैं झाज चलाऊँ सबै, मोकूं नहीं मारिहो तबै ॥ १९२ ॥
सेठ कही हम और न काज, झाज चलाय देय सुखसाज।
और नहीं मारन तें काम, सुनि के श्रीपाल बल धाम ॥ १९३ ॥
जाय समुद्र तीर सब ठए, कोडिभट जिहाजन पै गये।
लीला करि बलवान अपार, सब ही झाज चलाई सार ॥ १९४ ॥
तब इनको बल सब जन जोय[९१], सबही के मन अचरज होयं।
सेठ कही भट तुम हम लार[९२], ले रुजगार[९३] रहो चर[९४] सार ॥ १९५ ॥

---

७९. विचरण करना, घूमना, ८०. वस्त्राभूषण, ८१. पैर, ८२. पहिने, ८३. वस्त्राभूषण, ८४. यश-लक्ष्मी का वर, ८५. हे समुद्र-रक्षक देव! ८६. जहाज, ८७. तमाशा, ८८. अथवा, ८९. देवता को बलि देने के लिए, ९०. जहाज, ९१. देखकर, ९२. साथ में, ९३. वेतन, ९४. नौकर,

तब श्रीपाल कही सुनि मोहि, सेस सुभट दस तेरे जोय।
तिन सबको रोजगार सु पाय, एतो ल्यूं मैं एकलो चाय॥ १९६॥
इनको यह वच सुणि भट ओर, सेस दसूं बोले करि रोस[९५]।
अहो महाभट तू क्या सूर[९६], एतो मांगत द्रव्य अपूर॥ १९७॥
एतो पुरसत[९७] है क्या सही, तब सुनि कोडिभट इम कही।
भो सुभटो[९८] सुनियो वच मोहि, बहु कहने करि कारज कोहि॥ १९८॥
मेरो पुरसत अजहूँ न जान, दई चलाय झाज बलवान।
औरुं काम पड़ेगो कोय, तो मैं बल दिखलाऊँ सोय॥ १९९॥

(दोहा)

तब तुम हम बल जोय के, दीजो चाहो सोय।
तबै सेठ इन बैन सुनि, झाज चलायो जाय॥ २००॥
झाज चलाई दधि[९९] विषैं, चलती अति सोभाय।
फहरे धुजा समूह अति, ज्यों तारा नभ थाय॥ २०१॥
उन जिहाज कूं देखि के, आए चोर समूह।
लूटन लागे माल कूं, पड़ी जिहाज में कूंह॥ २०२॥

(सोरठा)

सुनिके सेठ पुकार, सुभट सेस दस लेय के।
कीयो जुद्ध अपार, बहुजन तहाँ परगति गये॥ २०३॥
सुभट सेस दस सोय, हारे सब रण में सही।
धवल सेठ कूं जोय, बाँधि लयो जय पाय के॥ २०४॥
लुटि जिहाज द्रव्य लेय, चाले अपने देस कूं।
तब को जन भाजेय[२००], कोडिभट पे सब कही॥ २०५॥

(चौपई)

रोस थकी भाषित नर जाय, भो भट कहा सेठ धन खाय।
आये चोर झाज लुटि लई, चाले बाँधि सेठ कूं सही॥ २०६॥

---

९५. क्रोध, ९६. शूरवीर, ९७. पुरुषत्व, ९८. योद्धाओं, ९९. समुद्र, २००. भागकर

इत्यादिक जन भाषी आनि, ऊठ्यौ कोढ़िभट तब जानि।
धनुष बान ले करि टंकार, कियो सोर दधि[1] में अतिसार ॥ २०७ ॥
जाय चोर ललकारे सही, करी हात तस्कर थर रही।
लाखु चोरन ते जुध लाय, बाँधि लये सबकूं उमगाय ॥ २०८ ॥
अपनो सेठ धवल छुड़वाय, सेठ सबै अति ही सुख पाय।
इनको पुरषत[2] लखि अधिकार, अचरज कूं पाये सब सार ॥ २०९ ॥
सेठ लाय पटभूषण सही, बाजे अति बजवाये मही।
श्रीपाल भुज पूजे सार, मुखतें नाना भक्ति उचार ॥ २१० ॥
कही सेठ सुनि जोध महान, तुम सम सुभट सुन्यो नहीं कान।
ना कोऊ सुर नैन तें जोय, तू बुधिवान बली भट कोय ॥ २११ ॥
सेठ आदि सब ही जन आय, श्रीपाल की अति थुति लाय।
तब सब कही चोर दुखकार, नाखो देह दधि में निरधार ॥ २१२ ॥
चोर सकल अति ही भय पाय, जान्यो मरन ठीक अब आय।
कै दधि चोर मारिहै सही, कै तन छेदे छिन छिन कही ॥ २१३ ॥
इत्यादिक भय तसकर धारि, निज जीवन की आसा छारि।
सब जन भट सेती[3] इम कहै, मारो चोर एक नहीं रहै ॥ २१४ ॥
महाधीर धर्मी श्रीपाल, जैनी सज्जन अति गुणमाल।
चोरन कूं अपने थल ल्याय, भोजन दीनो अति सुखदाय ॥ २१५ ॥
पटभूषण सबकूं पहराय, सबतें खिमा[4] कराई जाय।
नाना मिष्ट वचन तें पोख, किये सकल तसकर निरदोष ॥ २१६ ॥
तब तसकर भट की थुति करी, भो प्रभु धन्य दया हम धरी।
सबकूं अभैदान तुम दयो, तातें सब ही को तन हयो ॥ २१७ ॥
इत्यादिक थुति करि सब चोर, पाय नये[5] भट के मद छोर।
चोर जाय सब कियो विचार, आपन पै उनको उपगार ॥ २१८ ॥
आपण भी उनकी कछु सही, करनी भक्ति सबै मिलि कही।
भरि भरि रतन झाज बहु लाय, कीनी भेंट सुभट को जाय ॥ २१९ ॥

---

१. समुद्र, २. पुरुषत्व, ३. से, ४. क्षमा, ५. पैरों में झुककर नमस्कार किया

अद्भुत मणि मुक्ता फल आदि, नाना वसन[६] महा सुखवाद।
सो सब श्रीपाल कूं दई, नाना विधि मुख तैं थुति चई॥ २२०॥
लयो सेठ को जो जो माल, सो सब आनि दयो ततकाल।
सेवक श्रीपाल के होय, अपने थानक चाले सोय॥ २२१॥
अब सब काज महा सुध होय, चाली दधि में सब भय खोय।
अनुक्रम सबै झाज सो आय, रतन दीप पहुँचे सुख पाय॥ २२२॥
पद्मराग मणि आदि सु जोय, सो सब वस्त[७] दीप इस होय।
कोडिभट के यह दिठ जानि[८], आवे जहाज जिनसुर थांनि[९]॥ २२३॥
दीप ग्राम वन पर्वत मांहि, दर्शन बिन आगू[१०] नहीं जाय।
पूजा भक्ति करे मन लाय, तब अनजल[११] खावै सुख पाय॥ २२४॥
यह परतज्ञा[१२] गुर पै लही, तातें रतनदीप भट ठही।
सहस कूट ऊतंग[१३] जिन थान, देखि र गयो महागुणवान॥ २२५॥
बहु धुज[१४] मंडित मणि अति जड़ी, मानूं सुर्ग सम्पदा खड़ी।
इत्यादिक महिमा बहु जान, वंदन कूं आयो तिस थान॥ २२६॥
अष्ट द्रव्य श्रीपाल सु लाय, पूजा कूं जिनमंदिर आय।
आगे जुरे[१५] देखि पट[१६] सही, तिष्टे तहाँ लखे नर सही॥ २२७॥
उन पै श्रीपाल भट जाय, पूछी भो नर सुनो सुभाय।
यह पट मंदिर के किन जुरे, बज्रमई दीखत है खरे॥ २२८॥
कहो किन जुरे किते दिन भये, कहा जुरै आगे ही थए।
तब किन कही सुनो भट मोहि, मैं मती भाखित हूं अब तोहि॥ २२९॥
आगे ही यह जुरे कपाट, वज्रमई अति हे दिढ डाट।
स्वर[१७] भी पट खोलन कूं कोय, समरथ नांहि धरत है सोय॥ २३०॥
तब इम वचन सुने श्रीपाल, परसे हाथ खुले ततकाल।
जै जै सब्द तबे सुख लाय, मंदिर माँहि गये हरषाय॥२३१॥
तहाँ बिम्ब देखत ही सोय, मन वच काय नयो सिर जोय।
जिनवर बिम्ब देखि सुख लयो, बिम्ब कांति करि रवि[१८] लाजयो॥ २३२॥

---

६. वस्त्र, ७. वस्तु, ८. दृढ़ जानकर, ९. जिनेश्वर स्थान, जिनमन्दिर, १०. आगे, ११. अन्न-जल, १२. प्रतिज्ञा, १३. ऊँचा, १४. ध्वजा, १५. जुड़े हुए, बन्द, १६. किवाड़, दरवाजा, १७. सुर,देवता, १८. सूर्य

ऐसो बिम्ब देखि श्रीपाल, नमस्कार कीनो गुणमाल।
अष्टद्रव्य तें पूजा लाय, पीछे भक्ति करी सुखदाय॥ २३३॥
कीनी थुति नाना प्रकार, कहाँ लूं[१९] कहिए सब विसतार।
पै कछु कहे अलप सी जानि, ताके भने सने अघ हान[२०]॥ २३४॥

(पद्धरि)

अहो देवपति हरि देवनाथ, पूजै सुर नर खग[२१] जोरि हाथ।
सुध आत्म धर्म कारण सुभाय, पुन्यहीन भक्ति तेरी न पाय॥ २३५॥
मैं को पूरब पुन्य तोही जान, तुम दरसन तें भव[२२] सफल मान।
तुम पद परसत[२३] मो कर्म जाल, अघ की टूटी अति सघनमाल॥ २३६॥
प्रभु आज सफल भए नैन मोहि, तुम मूरति कूं लखि पाय सोहि।
मो सफल भए कर[२४] दोय नाथ, कीयो सपरस[२५] तुम बिम्ब साथ॥ २३७॥
मोहि चरण पवित्र भए सु देव, मैं आयो मंदिर करन सेव।
मो मस्तक भव तें सफल होय, तुम कूं नयो उर भक्ति जोय॥ २३८॥
त्रैलोक पूजि[२६] जग तिलक ईस, तुम सेवत शिवसुर राह दीस।
मुख कीनो सुध[२७] तुम भक्ति ठानि, तुम चिंतत तें उर[२८] सफल मान॥ २३९॥
तुम पूजा तें जगपुजित[२९] होय, तुम भक्ति थकी स्वर[३०] भक्त जोय।
तुम गुण अनंत किम कहि सु जाय, ऐसे गुण अनथल[३१] नहीं पाय॥ २४०॥
तुम गुण कहने कूं गणी जे सोय, चव ज्ञान धार[३२] समरथ न होय।
तो अलप बुधी कवि किम बखान, तुम भक्ति जानि करी कर्म हान॥ २४१॥
तुम दीनन के रछपाल[३३] देव, मैं मन वचन तन तुम करूँ जु सेव।
भो ज्ञानमूर्ति शिवनारिकंत, तुम सीस नमैं मुनि से महन्त॥ २४२॥
तुम धर्मतीर्थ करता जिनन्द, तुम सेवे सुर नर खग मुनिन्द।
प्रभु चाहि नहीं कछु और मोहि, भो भो[३४] में सरने चहुँ सु तोहि॥ २४३॥

---

१९. कहाँ तक, २०. पढ़ने-सुनने से पाप की हानि होती है, २१. विद्याधर, २२. जन्म, २३. चरण-स्पर्श, २४. हाथ, २५. स्पर्श, २६. त्रिलोकपूज्य, २७. शुद्ध, २८. हृदय, २९. जगत से पूज्य, ३०. सुर, ३१. अन्य जगह, ३२. चार ज्ञान धारी, गणधर, ३३. रक्षक, ३४. भव-भव में, जन्म-जन्म में

इम वानि भक्ति श्रीपाल राय, अघ किये चूर बहु पुण्य लाय।
जाके भव निकटि जु होय देव, सो ही जन जिन की लहे जु सेव ॥ २४४ ॥

(दोहा)

इम थुती[३५] करी श्रीपाल नृप, बहु विधि पुन्य उपाय।
सफल जनम निज जानि के, ठयो सभा में आय ॥ २४५ ॥

(चौपई)

ता समय एक खगपति[३६] आय, कोडिभट सूं इम बतलाय।
भो पुन्य पुरष सुनो वच मोहि, गिर वैताढ दक्षण दिसि सोहि ॥ २४६ ॥
तहां इक नगर रथनुपुर जानि, दूजो पुर बलवक्र बखान।
तहां कोहूँ विद्युतप्रभ राय, मेघमालिनी देवी कहाय ॥ २४७ ॥
ता उर पुत्र दोय बल सूर, चित्र विचित्र नाम गुणपूर।
फिरि इक मदनमंजूषा सुता, महासती बहु गुण करि जुता ॥ २४८ ॥
इक दिन जसोभद्र मुनि आय, तीन ज्ञान धारी हितदाय।
ते मुनि मैं पूछी थुति ठानि, कन्या को वर कौन बखानि ॥ २४९ ॥
तब मुनि ऐसी विधि सु कही, सेस शिखर[३७] जिनमंदिर सही।
याके पट[३८] खोले नर कोय, सो तेरी कन्या वर होय ॥ २५० ॥
तब मैं ह्यां चर राखे सही, ऐसी विधि तिनकूं हम कही।
जो को पुन्यधार नर आय, खोले पट पूजे जिनराय ॥ २५१ ॥
तब हम खबर दीजियो आय, सो तुम आज उदै पुन्य जानि।
आए यहां उनने सुधि दई, तब हम आनि मिले तुम सही ॥ २५२ ॥
मैं सब सहित कुटंबे आय, मदनमँजूषा कन्या ल्याय।
सो अब तुम वह कन्या व्याहि, कोटीभट तब आरे[३९] थाय ॥ २५३ ॥
तब बहु उछव[४०] करी खगराय[४१], मदनमँजूषा दई विवाह।
अस्व गैंद[४२] रतनादिक सार, पट भूषण बहु दिये भँडार ॥ २५४ ॥

---

३५. स्तुति, ३६. विद्याधर, ३७. सहस्रकूट चैत्यालय, ३८. द्वार, ३९. तैयार, ४०. उत्सव, ४१. विद्याधरों का राजा, ४२. घोड़े, हाथी

दीनी विद्या दोय प्रकार, सस्त्र निवारनि पहली सार।
बंध-विमोचन दूजी सही, इत्यादिक बहुती निधि लही ॥ २५५ ॥
मदनमँजूषा जुत द्रव्य लेय, कोडिभट आये थल जेय।
धवल सेठ पै आय सही, सकल बात भट इनकूं कही ॥ २५६ ॥
सेठ नारि लखि विभल[४३] भयो, धारि दगो[४४] मन उछव ठयो।
ज्यौ सुत व्याह कीजिये सही, तैसी ही विधि उछव ठही ॥ २५७ ॥
श्रीपाल नारी जुत होय, सुख सूं तिष्ठत हरषत होय।
इक दिन मदनमँजूषा सही, कोडिभट तें पूछत भई ॥ २५८ ॥
भो प्रभु मातपितादिक कोय, बंधु कुटुंबी है को तोय।
श्रीपाल सुनि ऐसे कही, भो प्रिय सुनो बात मो सही ॥ २५९ ॥
अंगदेश चंपापुर नाम, तहाँ राज मेरो सुखधाम।
ताको राज करत तहाँ सही, कर्म जोग्य इस आयो मही ॥ २६० ॥
देस मालवो नगर उजेणी, ता मो मात रहे गुणश्रेणी।
मैना सुंदरि नारी मोय, तिष्टत मात टहल[४५] कूं सोय ॥ २६१ ॥
सुभट सात सै नृप सुत सही, मेरे अंगरक्षक वह कही।
सो भी टहल मात की करै, सुख सूं तिन थानक तन धरे ॥ २६२ ॥
नगर उजेणी को भूपाल, प्रजापाल नाम गुणमाल।
सो है मेरो सुसरो सही, तात[४६] नारि सुंदरि को कही ॥ २६३ ॥
इत्यादिक सब बातें सही, श्रीपाल नृप भाखी यही।
सुनि खग[४७] की कन्या हरषही, पूरब पुन्य थकी मैं सही ॥ २६४ ॥
कोटिभट रूपी बलवान, जैसो मुनिवर कर्‌यौ बखान।
तैसो ही वर पायो सही, इम लखि नारी हरषत भई ॥ २६५ ॥
ऐसे धारे पति की सेव, निति प्रति बहुत करे स्वयमेव।
कबहू नृत्ति[४८] कबहु सुभ गान, बीण बजावे जुत सब तान ॥ २६६ ॥
बहुविधि हाव भाव करि सोय, पति कूं राग बँधावत होय।
सरब कला परवीणी[४९] नारि, नित प्रति रंग करे सुख धारि ॥ २६७ ॥

---

४३. विह्वल, ४४. धोखे, ४५. सेवा, ४६. पिता, ४७. विद्याधर, ४८. नृत्य, ४९. सर्वकला-प्रवीण

धवल सेठ यह कोतिक जोय, पीडा मदन दुखी अति होय।
तब इन रतनदीप तें सोय, घरि कूं[५०] झाज चलाई जोय॥ २६८॥
चाल्यो अपने देसा सही, मारग में दुठ उनमद[५१] भई।
बृहकरि मृतक समाचित थयो, काम सकल धर विसरि के गयो॥ २६९॥
सहपुत्र इस मंत्री कोय, पूछि सकल सीतल अति होय।
अहो साहपति सेठ महान, तुम तन कहा रोग गुणवान॥ २७०॥
बाय पित्त तप मुरछा कोय, पीडा कहा कहो तुम सोय।
तब यह लज्जा तजि सठ कही, मो तन रोग और नहीं सही॥ २७१॥
एक वेदना उपजी आय, तुम बिन सुख नहीं और कराय।
नारी श्रीपाल की जोय[५२], मो चित काम दसा चित होय॥ २७२॥
तातें जा विधि वाकी नार, मोहि मिले सो करो विचार।
वा बिन संगम जीवन मोहि, कही दुष्ट जानो मति कोहि॥ २७३॥
ऐसे निंद्य वचन सुनि नरा, कहन लगे ऐसे वच खरा[५३]।
अहो सेठ यह निन्द्य विचार, तातें जुगभव[५४] ही दुखकार॥ २७४॥
या भव प्राण जाय निज जानि, परभव नरक लहै दुखखानि।
ऐसी क्रूर[५५] विचार न सही, महापाप कारी दुखमही॥ २७५॥
परतिय[५६] सेवन तें अघ[५७] होय, ता फल नरक होय है सोय।
अपजस होय लोक में जान, ह्वै वध बंधन धन की हान॥ २७६॥
तुम क्या जिन आगम नहीं जान, परगट कथा कही तिस थान।
पर त्रिय लंपट जीव अपार, खोयो राज मरे निरधार॥ २७७॥
होय जगत निंद नरकन गये, वचनातीत महादुख लहै।
फिरि तुम पुत्र धरम[५८] श्रीपाल, तुम कन्या सम है वा बाल॥ २७८॥
ताकूं वंछित लाज न आय, फेरि ये कोडिभट छै राय।
ताको बल तुम नैनन जोय, जो यह बात सुनैगो कोय॥ २७९॥
तो सब भट बणिकादिक तोय, मारैगो अति अनरथ[५९] होय।
तातें तुम छोड़ो दुठ भाव, तो सबके सुख उपजे चाव॥ २८०॥

---

५०. घर की ओर, ५१. उन्मत्त, ५२. देखकर, ५३. सत्य, ५४. दोनों जन्म, ५५. बुरा, ५६.परस्त्री, ५७. पाप, ५८. धर्मपुत्र, ५९. अनर्थ, बुरा

या विधि सेठ धवल कूं सही, मंत्री बहुत समोधन कही।
तो भी दुठ उर आई नांहि, कही सुनो मंत्री हित लाय॥ २८१॥
और उपाव बात नहीं कोय, वा बिन मेरो मरनूं होय।
तातें सकल तजो बिखवाद[६०], मो तन राखन करो समाद[६१]॥ २८२॥
जो मो काज करे सिध होय, सो मो पासि लहो द्रव[६२] जोय।
अर वाको उपगार अपार, जीवन लूं भूलूँ नहीं सार॥ २८३॥
जा विधि यह भट मार्‌यो जाय, सो तुम सब मिलि करो य।
सब मिलि दधि[६३] में नाखन काज[६४], बुधिबल करन करो ये इलाज॥ २८४॥
या विधि कहि सब मला[६५] बुलाय, बहु द्रव देण कहौ सु भाय।
ऐसे कही सकल कंबात, सोर करो तुम अति दुखदात॥ २८५॥
केतो कहूं चोर बहु आय, कै कोउ महामच्छ दुखदाय।
ऐसे सोर करो सब जीव, आवैगो श्रीपाल सदीव॥ २८६॥
तब तुम थंभ ये करो उपाय, रस्सन[६६] तें बाधौ दिढि[६७] ताय।
तापे देहु चोटि श्रीपाल, बंधन छेदो फिरि ततकाल॥ २८७॥
डारि देहु या दधि[६८] के मांहि, ऐसी बिधि ये दगो[६९] बतांहि।
तब वह दुष्ट लोभ चित लाय, सेठ वचन आरे करवाय॥ २८८॥
लोभी जीव कहा नहीं करे, सरब पाप अपनै चित धरे।
तब इन मलाह सबै विधि करी, कोलाहल धार्‌यो तिस घरी॥ २८९॥
सुनि आयो श्रीपाल सु धाय[७०], थंभे चढो सरल चित लाय।
तब इन पापी बंधन तोर, डार्‌यो भट दधि मांहि मरोरि॥ २९०॥
तब श्रीपाल पड्‌यो दधि जाय, जपै पंच नवकार[७१] सुभाय।
अर सिधचक्र व्रत्त सुमरेय, एक बार जल डूबे जेय॥ २९१॥
फिर जल ऊपर आये सही, मुख नोकार[७२] जपत अधिक ही।
मंत्र प्रभावे जल थल होय, अगनि उष्णता सीतल जोय॥ २९२॥
विष सब अमृत होय सरूप, शत्रु मित्र सम होय अनूप।
विषधर[७३] हार होय गल माँहि, असि[७४] की धार माल पुष्प थाय॥ २९३॥

---

६०. वकवाद, व्यर्थ बात, ६१. उपायब, ६२. द्रव्य, धन, ६३. समुद्र, ६४. डालने के लिए, ६५. मल्लाह, ६६. रस्सियों से, ६७. दृढ़ता से, ६८. समुद्र, ६९. धोखा, ७०. दौड़कर, ७१. णमोकार मन्त्र, ७२. णमोकार मन्त्र, ७३. सांप, ७४. तलवार

तैसे घन[७५] काटे लगी पौन, ज्यौ जिन भक्ति थकी कर्म गौन।
सबही व्याधि खिणक मैं जाय, भक्ति थकी सुख ही सुख थाय ॥ २९४ ॥
पापी जीव पसु से सोय, मंत्र जाप तें सुरपद होय।
बिसनी जीव पाप करतार, ते सुर[७६] भये मंत्र तें सार ॥ २९५ ॥
मातपिता बंधु हित खान, जीवन कूं यह मंत्र जु जान।
महामंत्र सबकूं सुखदाय, सुमरो भवि[७७] सब विघन नसाय ॥२९६ ॥
ऊठत बैठत चलते सोय, पुर घर बन मंदिर में जोय।
सुख-दुख में जुद थानक[७८] सही, जोग्य मंत्र जपनूं सुखमही ॥ २९७ ॥
सो अब मंत्र तणे परभाव, तीर[७९] लग्यो भट दधि उमगाइ।
हाहाकार झाज में भयो, मदनमँजूषा सुनि दुख लयो ॥ २९८ ॥
रुदन करे अति सोक उपाय, महासती दुख तें बिललाय।
तब यह धवल सेठ दुख सोय, या ढिंग[८०] दूती भेजी जोय ॥ २९९ ॥
दूती जाय सती सूं कही, भो सुंदरी सुण मो बच सही।
तो पति तो दधि में परि मुवो[८१], सो तो भयो अपन तें जुवो[८२] ॥ ३०० ॥
तातें अब वाकी तजि आस, मो वच मानि होय दुख नास।
धवल सेठ धन रूप अपार, ताकूं तू पति लखि परमार ॥ ३०१ ॥
तू भी वय जू जोबन रूप, या तन तें सुख लहो अनूप।
ऐसे निन्दि वचन सुनि सती, मदनमँजूषा कहती हुति ॥ ३०२ ॥
हे पापिनी दुष्ट यह बैन, भाषत कहा नरक दुख दैन।
जो कुलवंती नारी होय, तिनके सरब सील धन जोय ॥ ३०३ ॥
सील बिना जीवन धिक्कार, नर नारी को सील जु सार।
ये ही जग आभूषण जानि, सील पूजि देवन करि मान ॥ ३०४ ॥
जों नर नारी कुसीले होय, स्वान[८३] समान जान इस लोय[८४]।
परभव नरक लहे दुठ जाय, तातें सील जोग्य मन भाय ॥ ३०५ ॥
ये ब्रध[८५] सेठ पिता सम मोहि, ये दुठ वचन जोग्य नहीं तोहि।
इत्यादिक सुभ वचन बखानि, सीख दयी दूती कूं थानि ॥ ३०६ ॥

---

७५. बादल, ७६. देवता, ७७. भव्य जीव, ७८. युद्धभूमि, ७९. किनारा, ८०. पास में, ८१. समुद्र में गिरकर मर गया, ८२. अलग, ८३. कुत्ता, ८४. लोक, ८५. वृद्ध,

दूती आय सेठ कूं कह्यो, सुनि कै सेठ दुखी अति भयो।
आप गयो नारी के पासि, नाना विधि दुठ वचन प्रकासि॥ ३०७॥
हे सुन्दरी हूं पीड्यो काम, जावत हूँ अब जम के धाम[८६]।
तू मो दया ठानि तन राखि, मैं तोय सरण लयो इम भाखि॥ ३०८॥
तो संगम बिन मो तन हानि, निसचै जानि दया की खानि।
ऐसे दुष्ट वचन सुनि सती, बोली रे नीलज[८७] दुरमती[८८]॥ ३०९॥
मैं सुत नारि कन्या सम जोय, जाकूँ बंछित धिक बुधि तोय।
आज थकी मैं सुसरो मान, अब तैं स्वान[८९] लख्यो अघखान॥ ३१०॥
तू है खर[९०] सम अति अघखान[९१], काज अकाज विचार न जान।
अपनो आतम दुख दधि[९२] मांहि, बोड़त[९३] हो दुठ संका नांहि॥ ३११॥
अन की त्रिय[९४] दुष्ट जो चहै, सो नृप आदिक को दंड लहै।
मारन ताडन घर धन नास, पाय फेरि मरि नरका बास॥ ३१२॥
इक दिस[९५] सरव पाप पग सोय, इक दिस सीलभंग दिस जोय।
सब अघ तो सरसूं सम जानि, सील भंग अघ मेरु समान॥ ३१३॥
परत्रिय सम अघ ओर न कोय, नर-नारी सब देखो जोय।
मेर[९६] चलै दधि[९७] सीस छुकाय, जे सुभ जीव न सील तजाय॥ ३१४॥
मेरे नेम[९८] यहै मन लाय, जो मैं श्रीपाल दरसाय।
तो अन पान[९९] करूँ नहीं नाहि, कै नौका ब्रत धरूं सुभाय॥ ३१५॥
या विध कह त्रिय मौन कराय, सुमरत भक्ति जिनेसुर भाय।
तब यह दुष्ट महाहठ ठानि, सील भंग करनूं मन आनि॥ ३१६॥
तब ब्रत सील तणो परभाय, देवासन कंपे अधिकाय।
तब इस सती तणो पुन्य जानि, देव बहुत आये तिस थान॥ ३१७॥
मणिभद्र जक्ष आयो सही, तिहि अति पौन बजायो[३००] मही।
तातें दधि जल हल्यो अपार, मानुं जिहाज डूबिहैं सार॥ ३१८॥

---

८६. यमराज के घर, ८७. निर्लज्ज, ८८. दुर्बुद्धि, ८९. कुत्ता, ९०. गधा, ९१. पाप की खान, ९२. दुःख-समुद्र, ९३. डुबोना, ९४. अन्य की स्त्री, ९५. एक ओर, ९६. सुमेरु पर्वत, ९७. समुद्र, ९८. नियम, ९९. अन्नजल-ग्रहण, ३००. हवा चलाई

फेरि चक्रेश्वरि देवी आय, झाज चक्र ज्यों सब फिरवाय।
रोहिणी देवी धुवा उही[1], ता कर कछू न सूजत[2] सही ॥ ३१९ ॥
ज्वालामालिनी देवी आय, सकल झाज में अगन[3] लगाय।
पदमावती देवी तहाँ आनि, मार्‌यो सेठ चरन गह[4] जानि ॥ ३२० ॥
खेत्रपाल वाहन चढि आय, सेठ तसो मुख अगन दिवाय।
दसमुख नाम चित्र यत आनि, ऊधो[5] टेरि दियो अघखानि ॥ ३२१ ॥
या बिध धवल सेठ कूं सही, आय स्वरां[6] अति ही दँड दयी।
पापी सेठ दुखी अति भयो, कोलाहल दधि में अति ठयो ॥ ३२२ ॥
तब सब वणिक आय इम कही, धवल सेठ तू पापी सही।
दुष्ट दुराचारी चंड़ाल, तैं अघफल पायो ततकाल ॥ ३२३ ॥
अब जा सती तणें पड़ पाय[7], कर उपसांति महाथुति लाय।
नहीं तुम पापी थकी हम सबै, झाज सहित पाणी में डुबै ॥ ३२४ ॥
झाज तणे सब बाणिक आय, धवल सेठ कूं अति उकलाय[8]।
सेठ आय नारी पद पर्‌यो, राखि राखि जननी उचर्‌यो ॥ ३२५ ॥
कीनूं गुनु[9] बिन जाने मात, सो सब क्षमा करो सुखदात।
मैं जो अघ ठान्यूं दुठ जीव, ताको फल मैं लयो सदीव ॥ ३२६ ॥
तेरे पति तें होय सँजोग, ता जुत बिलसो निसदिन भोग।
इत्यादिक करि तोषी[10] सही, तबै नारि करुणा करि कही ॥ ३२७ ॥
अहो सील रक्षक सुर सुनो, सेठ थकी अब समता अनो।
इम कह सेठ छुड़ायो सही, सब कोलाहल सांति जु भही ॥ ३२८ ॥
मदनमँजूषा कूं सुर आय, पटभूषण दे पूज कराय।
बार बार भक्ति अनि ठानि, सील प्रगट करि पौचे[11] थानि ॥ ३२९ ॥
सेठ सबन में निंदा पाय, लज्यावान[12] भयो दुखदाय।
अब सुनि श्रीपाल भट सोय, सुमरत नमोकार दुख खोय ॥ ३३० ॥
कोडीभट भुजबल तें सही, सायर तिरने कूं उमगही।
काठ खंड[13] इक पुन्य तें आय, ता परि बैठि तिरे उमगाय ॥ ३३१ ॥

---

१. धुआँ उड़ाई, २. कुछ नहीं दिखाई दिया, ३. अग्नि, ४. पैर पकड़ कर, ५. उल्टा, ६. देवता, ७. पैरों में गिरकर, ८. दुःखी करके, ९. गलती की, १०. संतुष्ट किया, ११. गये, १२. लज्जित, शर्मिंदा, १३. लकड़ी का टुकड़ा

मंत्र जाप करतो मुख जाय, भगति बिना नहीं और सहाय।
मगरादिक जल के दुठ जीव, खाबन आवे दौड़ि सदीव ॥ ३३२ ॥
सो इस मंत्र प्रभावे जानि, भै[१४] नहीं करै निकट को आनि।
लहरि समूह सिखर से[१५] आय, सो भी भय सब ही नसि जाय ॥ ३३३ ॥
इनके पुण्य उदैतें सोय, कोडि[१६] बिघन सांतिता होय।
अपनी भुजबल करि श्रीपाल, दधि तरतो आवै गुणमाल ॥ ३३४ ॥
दूर थकी दल पटण देस, देख्यो श्रीपाल गुणभेस।
तहां भूप धनपाल सुजान, बनमाला राणी गुणखान ॥ ३३५ ॥
पुत्र तीन तिनके गुणवान, तिनके नाम सकल गुणथान।
नाम मनोहर पहलो सोय, दूजो नाम सुकंठ सु जोय ॥ ३३६ ॥
श्रियकंठ तीजा को नाम, पुत्री गुणमाला गुणधाम।
रूप सील विद्या बुधि लीन, सकल कला में अति परवीन ॥ ३३७ ॥
श्री धनपाल राय इक दिना, पूछे अवधि मुनि थुति ठना।
हे मुनि मो कन्या वर कोय, दयाभाव करि भाखो सोय ॥ ३३८ ॥
तब मुनि भाखी बलभुज सोय, दधि तिर आवैगो नर कोय[१७]।
सो तोहि कन्या को बर जानि, ऐसे वचन सुने नृप कानि ॥ ३३९ ॥
राय एक नर कूं दधि तीर[१८], रखवाला राख्यो गुणबीर।
कही जिको नर जलध तिराय, तब हम खबर दीजियो आय ॥ ३४० ॥
सो नर श्रीपाल कूं आत, भुजतें वारिध तिरत लखात।
जाय स्वामी अपने कूं कही, भो राजन तो पुन्य तें सही ॥ ३४१ ॥
मुनि भाखो सो नर पुन्यवान, आयो भुजबल जलधि तिरान।
तब सुनि राजा उर हरषाय, सनमुखि गयो सैन्य ले मिलाय ॥ ३४२ ॥
श्रीपाल भट देख्यो राय, पट भूषण सब ही तन लाय।
नगर उछाह हरख मन आन, पुर परबेस[१९] करायो जान ॥ ३४३ ॥

---

१४. भय, १५. पहाड़ जैसी बहुत ऊँची, १६. करोड़ों, १७. जो कोई मनुष्य अपनी भुजाओं के बल से समुद्र तैरकर आएगा, १८. समुद्र के किनारे, १९. नगर-प्रवेश

(अडिल्ल)

भले महूरत गुणमाला परणावई।
दियो झाज जो बहु द्रव जुत सुख पावई।
प्रीति थकी नृप कही सुनो श्रीपाल जू।
मो घर में सुभ वस्त्र तिहारो माल जू॥ ३४४॥
कही बात श्रीपाल सुनो नृप बात जु।
बस्त तिहारी ज्ञान नहीं हम आत जु।
जो तुम आज्ञा देय काम भंडार को।
कोई दिन हम करे हुकम सिर धारि को॥ ३४५॥

(दोहा)

तब राजा हँसि के कही, जो तुम इम खुशि होय।
तो सब काम भँडार को, राखो तुम ढिंग सोय॥ ३४६॥
सिरीपाल हर्ष लाय के, लयो काम भंडार।
नृप को अति आनेस्वरी, तिष्टे है सुखधार॥ ३४७॥
धवल सेठ सब झाज ले, निकस्यो इस पुर आय।
रतनादिक बहु भेंट ले, चाल्यो नृप के पाय॥ ३४८॥
राय भेंट ली हरषि कें, करी दिलासा[२०] सार।
बैठन की अज्ञा करी, सेठ ठयो निरधार॥ ३४९॥
श्रीपाल कूं नृप कही, सुनु कोडिभट बात।
द्यो तँबोल इनकूं[२१] सही, लेहो भेंट सुखदाय॥ ३५०॥
श्रीपाल निज हाथ सूँ, सब कूँ दये तंबोल।
सेठ देखि भट कूँ सही, भयो हियो झकझोल॥ ३५१॥
ब्रजघात मानूं भये, सेठ धवल सिर आय।
सोची यह श्रीपाल है, इम शंका उर लाय॥ ३५२॥
निकसि वाडि दरवान[२२] कूं, पूछो सेठ सुभाय।
राज जँवाई[२३] कौन है, तब दरवान बताय॥ ३५३॥

---

२०. सांत्वना, २१. इनको तंबोल (स्वागत हेतु कुछ) दो, २२. द्वारपाल, २३. राजा का दामाद

दधि तिर के ये आइयो, भूप सुता परणाय।
सेठ सुणी निश्चै करी, श्रीपाल यह आय ॥ ३५४ ॥
इम सुनि भय चित लायकै, सेठ गयो निज थान।
ते कपटीयन के सँगी, तिनतें मसलति[२४] ठानि ॥ ३५५ ॥
भाँड नकल वाले सही, तिनकूं सेठ बुलाय।
फिरि पापी ऐसे कही, महा कपट चित थाय ॥ ३५६ ॥
भो नकल्यो[२५] तुम जाय कें, नकल करो नृप पासि।
निज विद्या परगास के, करो सुखी नर रास ॥ ३५७ ॥
खुशी करो तुम राय कूँ, तब कछु तुमे दिवाय।
राय जँवाई आय कें, देय तुमे कछु लाय ॥*
कोऊ तात कहो तुम भ्रात, कोऊ कुटंम सयान।
तातें हम बीनये सरस, निज प्रभाव यह मान ॥ ३५८ ॥

(चौपई)

तब तुम श्रीपाल लग जाय, लपटो सकल महामोह लाय।
कोऊ भ्राता पिता कहात, कोऊ चचा कहो सुखदात ॥ ३५९ ॥
इत्यादिक बहुविधि वच भाषि, ताते बहुत कह्यो दे साषि।
मैं तुम द्रव्य[२६] देह हूँ घनो, धवल सेठ पापी इम भनो[२७] ॥ ३६० ॥
इम कहि राव पासि खनवाय[२८], सो दुठ भांड लोभ मन लाय।
जाय भूप पै नाचे सही, नाना विधि के कौतिक ठई ॥ ३६१ ॥
इन्द्रजाल विद्या परकासि, राय सुखी कीनूं सुख रासि।
तब नृप श्रीपाल कूं कही, इनकूं देहो[२९] रिझ[३०] तुम सही ॥ ३६२ ॥
सुनि कोडीभड ले बहु माल, देन लग्यो नट कूं ततकाल।
तब वह दुष्ट कपट तें सही, सब मिलि भट तन लागे कही ॥ ३६३ ॥
एक भांड भाषी सुनि राय, दोहित[३१] श्रीपाल मो थायं।
दूजे भाँड कही सुनि भूप, मो कन्या वर जानि अनूप ॥ ३६४ ॥

---

२४. सलाह, २५. हे नकलचियो, २६. धन, २७. कहा, २८. भेजा, २९. देओ, ३०. भेंट, ३१. दोहिता, लड़की का लड़का

*मूल प्रति में ही इस पर कोई संख्या नहीं दी गयी है।

तीजे कही सुनूं नरराय, मो कन्या को देवर थाय।
चौथी एक पापिनी कहें, बहु दिन तें सुत देख्यो यहें॥ ३६५॥
भो नृप यह जुग सुत मो थाय, श्रीपाल इक दिन दुख पाय।
भोजन समै कलह करि सोय, जाय समुद में डुबो जोय॥ ३६६॥
सो तजि आस[३२] रोय से रही, कोई पुन्य उदै हम भई।
बहु दिन तें सुत मेलो भयो, सो उपगार तिहारो थयो॥ ३६७॥
कोऊ भ्रात कहें मिल आय, रुदन करै अति नेह जताय।
इत्यादिक नर नारी भाँड, बात कपट कर भाखी माँड॥ ३६८॥
सो सठ राय साँच सब जानि, कोडीभट पर क्रोध जु ठांनि।
कोटवाल कूं भाखी राय, मो कन्या परणी नट आय॥ ३६९॥
तातें याकूं मारो जाय, कै सूली पै देहु चढ़ाय।
इम कह मारन कूं ले जाय, हाहाकार नगर में थाय॥ ३७०॥
कोई सखी आय के सही, गुणमाला कूं ऐसे कही।
हे सुन्दरी किम करे सिंगार[३३], तो पति कूं दूषन दे सार॥ ३७१॥
भाँड जाति को दोषन देय, सूली दीन गये तिन लेय।
काके कारण करो सिंगार, यह तो बात भई निरधार॥ ३७२॥
ऐसे दुखदा सुनि बच सही, ततखन[३४] श्रीपाल पै गयी।
जाय कही हे नाथ सुजान, अपनो कुल भाखो गुणवान॥ ३७३॥
सुनि के श्रीपाल इम कही, हे प्रिय भाँड कुली हम सही।
ये सब ही हम बंधु जानि, अब कहा पूछत है गुण खांनि॥३७४॥
तब गुणमाला भाखी देव, ऐसो बल प्राक्रम[३५] सुमेव[३६]।
रूप बुद्धि गुण और अपार, यह नहीं होय भांड में सार॥ ३७५॥
तातें ठीक कहो कुल आय, मोपै दयो करो हित थाय।
नांतर[३७] तुम पै मरिहूं सही, इत्यादिक बहु हठ करि कही॥ ३७६॥
तब श्रीपाल कही सुनि नारि, धवल सेठ की झाज मँझार।
मदनमँजूषा नारी मान, विद्याधर की कन्या जान॥ ३७७॥

---

३२. आशा, ३३. शृंगार, ३४. उसी क्षण, ३५. पराक्रम, ३६. स्वयमेव, ३७. अन्यथा

सो मेरो कुल जानत सही, वाकूं[३८] जाय पूछि इम कही।
वे सब भ्रांति भजावनहार[३९] सुनि इम गुणमाला सुखधार ॥ ३७८ ॥
महाधीर कोडिभड राय, देखे कर्मचिह्न हरषाय।
रंच सोक तिनके मन मांहि, चाहे तो जीते पल मांहि ॥ ३७९ ॥
पै जिनधर्म धरा अति धीर, सुख दुख कर्म देत है बीर।
तातें मगन सोच[४०] नहीं कोय, गुणमाला अब चाली सोय ॥ ३८० ॥
दधि की तीर[४१] झाज पै ठही, को है मदनमँजूषा कही।
श्रीपाल नारी खग सुता, बोली बेग महागुण जुता ॥ ३८१ ॥
तब इन सुन्यो नाम श्रीपाल, तब ततखिण[४२] आयी गुणमाल।
सो कब थी रूखे तन सोय, मदनमँजूषा कूं इम जोय ॥ ३८२ ॥

(दोहा)

गुणमाला पूछत भई, भो सुनि सखी सुजान।
मो पति भट श्रीपाल को, को कुल कहौ बखान ॥ ३८३ ॥

(छंद चाल)

श्रीपाल तणूं[४३] सुनि नामो, हरषी उर में गुणधामो।
पूछ्यो को है श्रीपालो, तब भाषत है गुणमालो ॥ ३८४ ॥
भुजबल तें दधि तिर आयो, सो तात[४४] मुझे परणायो।
तब दुष्ट भाँड इक आयो, अपनो कुल भाषत बायो ॥ ३८५ ॥
कहै भाँड कुली श्रीपालो, लखि राय क्रोध करि जालो।
मारन की अज्ञा दीन्ही, तब मैं जाय बीनती कीन्ही ॥ ३८६ ॥
प्रभु अपनो कुल बतलावो, मेरी करुनो उर भावो।
तब तुम पै मुझे पठाई[४५], अब तुम सत[४६] भाषो बाई ॥ ३८७ ॥
तब मदनमँजूषा बोली, हूँ भाष भेद[४७] जू खोली।
मोकूं नृप तें मिलवाय, ज्यों भ्रांति सकल की जाय ॥ ३८८ ॥

---

३८. उसको, ३९. भ्रांति दूर करनेवाली, ४०. चिन्ता, दुःख, ४१. किनारा, ४२. उसी क्षण, ४३. का, ४४. पिता ने, ४५. भेजा, ४६. सत्य, ४७. रहस्य

सुणि गुणमाला जुत होई, फिरि मदनमंजूषा दोई।
राजा प्रति जाय मिलाई, तब बातें सकल सुनाई ॥ ३८९ ॥

(पद्धरि)

अब राय सुनो मेरी सुभाय, यह उच्चकुली श्रीपाल राय।
सब देसन में सुभ अंगदेस, ता मधि चंपापुर महा सुभेस ॥ ३९० ॥
तहां सिद्धारथ भूपति अनूप, त्रिय कमलप्रभा धरि सती सरूप।
ताको सुत यह श्रीपाल जोय, महा कोडीभड जनि बल सोय ॥ ३९१ ॥
हूं विद्याधर कन्या सु जानि, मो पिता विवाही भक्ति ठानि।
तब धवल सेठ दुठ क़पट लाय, मो कारण[४८] दधि डार्‌यो कुभाय ॥ ३९२ ॥
सो भुजबल तिर्‌यो समुन्दराय, कै पुन्य उदै तो नगर आय।
यह सेठ दुष्ट दे माल जोर[४९], इन भांड सिखाये कपट घोर ॥ ३९३ ॥
यह कोडीभट श्रीपाल जानि, महानीतिवान गुण रूप खान।
या विध कुल की सब बात सोय, फिर भाषी सब जो आगे होय॥ ३९४ ॥

(सोरठा)

इम आगम की बात, जा विध[५०] छाँड्‌यो देस कूं।
बीरदमन नृप आद, कोढ़ी लखि कन्या दई ॥ ३९५ ॥
मैंणा सुंदरि नारि, ताके पुन्य प्रभाव सूँ।
कोढ़ हर्‌यो सुख धारि, व्याह तणी सब विध कही ॥ ३९६ ॥
पिता नाम ले नांहि, सुसर नाम वीडदावई।
सुभट सात सै ठही, मैणा सुंदरि जुत सही ॥ ३९७ ॥
मात टहल[५१] कूं राखि, छांडि उजेणी[५२] नगर कूं।
गमन कियो इम भाषि, सो श्री सब बिध भाषई ॥ ३९८ ॥
आय अकेले जानि, झाज चलाई पांच सै।
तसकर[५३] लाख जिताय, सैसकूट[५४] के पट[५५] खुले ॥ ३९९ ॥

---

४८. मेरे कारण से, ४९. जबरदस्ती, ५०. जिस प्रकार, ५१. सेवा, ५२. उज्जयिनी, ५३. तस्कर, चोर, ५४. सहस्रकूट, ५५. द्वार

(चौपई)

इत्यादिक सब बात कहाय, धवल सेठ के दुख की लाय।
देव सहाय करी तब आंनि, सो सब भूप पासि गुणखान ॥ ४०० ॥
कही बात सब भ्रांति नसाय, राय कथा सुणि अति पिछताय[५६]।
अपनी बिगर ज्ञान सुधि जोय, आपन आये निंद्यो सोय ॥ ४०१ ॥
कोडीभट पै भूपति जाय, नमस्कार करि अरज[५७] कराय।
भो भट जो मैं बिगर[५८] विवेक, मूरखता करि धरि मन टेक ॥ ४०२ ॥
जो मैं खेद दियो खिम[५९] सोय, तब श्रीपाल कहै सुनि मोय।
भो राजन हम तोसूँ सही, ओरन तें भी समता कही ॥ ४०३ ॥
पै तुम बिगर ज्ञान यह काम, जोग्य नहीं करणो गुणधाम।
राजपुत्र नीचो कुल सोय, मूरख तें नहीं छानो[६०] कोय ॥ ४०४ ॥
जो मही भीम उदधि तिर आय, सो कुल नीच किसी विधि थाय।
गाय सिंघ सुत किम सम होय, नीच ऊंच कुल छानो कोय ॥ ४०५ ॥
फिर एकाकी हू बलवान, जोदा कोडिभड मद थान।
जो मुझ भुजबल[६१] देखन चाहि, सो सब क्षत्री ले बुलवाहि ॥ ४०६ ॥
मो पै सकल भेजि तुम सही, ज्यों भुजबल दिखलाऊँ कही।
मुनि बच भी तो निश्चै नांहि, मुनि किम नीच कुली बतलाहि ॥ ४०७ ॥
या विध श्रीपाल सब कही, राय प्रीत कर ऐसे चही।
भो भट सुर बीर बलवांन, सब कारज समरथ जुत ज्ञान ॥ ४०८ ॥
तुम जिन भक्ति धर्म बुधि लीन, चूक माफ करि मो लखि दीन।
इत्यादिक नृप सुभ बचाय, श्रीपाल तब तोषत भाय[६२] ॥ ४०९ ॥
फिर नृप भट कूं गज चढ़वाय, नाना विधि वाजे बजवाय।
बहु उछाव कर मंदिर आंनि, मदनमंजूषा मिलि सुख ठांनि ॥ ४१० ॥
मदनमँजूषा भट श्रीपाल, मिलि निज निज दुख कह गुणमाल।
परसपरे[६३] सुख पायो घनो[६४], सकल मनोरथ पूरन ठनो ॥ ४११ ॥

---

५६. पश्चात्ताप करता है, ५७. अर्ज, प्रार्थना, ५८. बिना, ५९. क्षमा करो, ६०. छुपा हुआ, गुप्त, ६१. भुजाओं की शक्ति, ६२. संतुष्ट हुआ, ६३. परस्पर, ६४. बहुत

पुन्य प्रभाव थकी श्रीपाल, नासे विघन सबै ततकाल।
दोऊ नारि सहित जुत भोग, सुख करि तिष्ठे कर्म संजोग॥ ४१२॥
सेठ थकी कोप्यो फिर राय, झाज बणिक तब सकल बँधाय।
झाज माल लूटो सब होय, मारो दुष्ट बचे नहिं कोय॥ ४१३॥
ऐसी आज्ञा भूपति दई, सबकी मुसक बांधि अधकई।
देन लगे नाना विध मार, ते सब दुखतें वचन उचार॥ ४१४॥
कियो पाप इक जन दुठ कोय, ताके सँग सब कूं दुख होय।
यातें दुष्ट संग नहीं करो, जल अगनी पडि[६५] मरनो वरो[६६]॥ ४१५॥
इम कोलाहल सुनि श्रीपाल, भूप पासि आयो ततकाल।
देखे बँधे सेठ दुख पाय, कोडीभड उर करुणा आय॥ ४१६॥
तबै जाय भूपति कूं कही, मेरो पिता धर्म को सही।
यातें राय योग[६७] नहीं करी, मो बिन पूछे यह विध धरी॥ ४१७॥
यह मेरो उपगारी[६८] जानि, या प्रसाद अतकूं[६९] हम आन।
कन्या दोय राय की लही, इत्यादिक क्रम परखे सही॥ ४१८॥
या विध नृप कूं कहि श्रीपाल, सेठ छुड़ाये सब ततकाल।
झाज सकल दीनी छुड़वाय, अपनूं माल लयो मँगवाय॥ ४१९॥
श्रीपाल सबकूं घरि लाय, न्यूत्यो[७०] सेठ बणिक जुत जाय।
भोजन मिष्ठ जिमायो सही, सबकूं मिष्ट बचन अति कही॥ ४२०॥
अहो सेठ तेरे परसाद[७१], मेरी ऐती भई मरजाद[७२]।
बहुत विभूति लही[७३] में जान, सो उपगार सकल तो मान॥ ४२१॥
इत्यादिक सुभ बचन अलाप[७४], फिरि तन धन दे पोखे आप।
श्रीपाल अति सुजन जोय, छेदे अगर देइ कसबोय[७५]॥ ४२२॥
सेठ सरलता इन की जोय[७६], अपन आप निंद्यो अति सोय।
हा हा इस सज्जन कूं सही, मैं नानाविधि के दुख ठही॥ ४२३॥

---

६५. अग्नि में गिरकर, ६६. अच्छा है, ६७. योग्य, उचित, ६८. उपकारक, ६९. इधर को, ७०. निमन्त्रण दिया, ७१. कृपा से, ७२. मर्यादा, इज्जत, ७३. प्राप्त की, ७४. कहकर, ७५. खुशबू, सुगन्ध, ७६. देखकर

मैं मुख किम दिखलाऊँ जाय, ऐसे लखि निज घात[७७] कराय।
सो मरि[७८] पाप तणे परभाव, उपज्यो तबै नरक में जाव॥ ४२४॥
पर त्रिय लंपट[७९] अति दुठ जीव, तिन इम दुख नर्क लहै सदीव।
ताती[८०] पुतली लोह की लाय, ताके तन[८१] तें सपरस[८२] पाय॥ ४२५॥
छेदन भेदन दुख बहु जानि, पाय महापाप तें आनि।
परत्रिय लंपट जुग भो[८३] मांहि, हयां[८४] नंद्या[८५] मरि नरकू जाय॥ ४२६॥
परनारी सम पाप न कोय, भो भवि[८६] सील रतन नहीं खोय।
सील प्रभावे स्वर शिव[८७] पाय, नासे कुजल भवन जस थाय॥ ४२७॥
यह तो कथा रही इस थान, श्रीपाल तिष्टत सुखवान।
पुन्य तें सुख पाप तें दुख होय, करो विवेकी निज हित जोय॥ ४२८॥
इक दिन श्रीपाल भटराय, बैठ्यो सभा सिंहासण आय।
बहुत विभूति संग पुन्य तणी, पाप थकी लछि[८८] होय न घनी[८९]॥ ४२९॥
देसांतरी बणिक इक आय, श्रीपाल तें मिल्यो सुभाय।
रतनादिक बहु भेट जु आंनि, सेवे बचन भूप तब ठांनि॥ ४३०॥
अहो बणिक पति अति बुधिवान, तुम बहु भरमत हो सुभ थान।
कोई अपूरब बात सुनाय, तब वह बणिक कहै सुख पाय॥४३१॥
अहो राय इस आरज[९०] मांहि, कुंडलपुर इक है उस ठांहि।
मकरकेत इक भूपति सही, नारी कपूरतिलक घरि कही॥४३२॥
ताके अमरसुंदर सुत जांनि, पुत्री सू[९१] सब ही गुणखानि।
बड़ी चित्ररेखा मन लाय, इनकूं आदि सुता सूं थाय॥४३३॥

(दोहा)

तिन सब परतग्या[९२] लई, जे मिरदंग[९३] बजाय।
हम कूं रिझवावे[९४] सही, नृत्य विषें सुखदाय॥ ४३४॥
सो नृप सुत हम कूं वरे, भोगे भोग अपार।
ऐसे बिन हम ना वरें, यह मन दिढ निरधार॥ ४३५॥

---

७७. आत्महत्या, ७८. मर कर, ७९. परस्त्री के अभिलाषी, ८०. गर्म, ८१. शरीर, ८२. स्पर्श, ८३. दोनों जन्म में, ८४. यहाँ, ८५. निन्दा, ८६. हे भव्य जीव, ८७. स्वर्ग-मोक्ष, ८८. लक्ष्मी, ८९. बहुत, ९०. आर्यक्षेत्र, ९१. सौ, ९२. प्रतिज्ञा, ९३. मृदंग, ९४. प्रसन्न करे

वाणिक के यह वचन सुणि, श्रीपाल हरषाय।
ततखिन तिस थानक[६५] गयो, देखी कन्या जाय ॥ ४३६ ॥
सकल रूप की खानि अति, काम कला परबीन[६६]।
तिनकी छबि आगे सही, रति हू दीखे दीन ॥ ४३७ ॥
ऐसी कन्या जोय के[६७], श्रीपाल हरषाय।
उन सबकूं कहते भये, मैं तुम वाद कराय ॥ ४३८ ॥
करो नृत्य तुम सब मिली, मैं मिरदंग बजाय।
तुम सबकूं राजी करूँ, तो परनूं सुखदाय ॥ ४३९ ॥
तब सब कन्या नृत्य करि, भट मिरदंग बजाय।
अपनी बुद्धि प्रभावतें, सब कन्या रिझवाय ॥ ४४० ॥
तब सब कन्या हरषि के, लखि नृप सुत परवीन।
विनय सहित भाषत भई, तुम हम पति गुणलीन ॥ ४४१ ॥
मकरकेत राजा तबै, सब कन्या परनाय।
श्रीपाल ते परनि को, चालन कूं उमगाय ॥ ४४२ ॥
हाथी रथ घोटक[६८] घना[६९], पटभूषन[४००] धन आदि।
दीने नृप श्रीपालनें, सुख तिष्टत दुख वादि ॥ ४४३ ॥
एक समै नृप की सभा, सीध पीठि[१] थित लाय।
इते एक नर आंनि के, इम बिनती करवाय ॥ ४४४ ॥
भो राजन कंचन नगर, राज करे बडसेन।
कंचनमाला नारि घरि, सुत अति दो[२] सुखदेन ॥ ४४५ ॥
फिर कन्या नौसे कही, बड़ी तनो[३] सुनि नाम।
बीसलमति आदिक सबै, महारूप गुणधाम ॥ ४४६ ॥
तहाँ तुम चालो बेग[४] दै, सब परनो[५] सुख दाय।
तब कोटीभट इम कही, जीव तहे[६] वह राय ॥ ४४७ ॥
जब हमकूं परनाय हें, ल्यौ न अदत्तादान।
तब वारन ऐसे कही, सुणो भूप गुणवान ॥ ४४८ ॥

---

६५. स्थान पर, ६६. प्रवीण, ६७. देखकर, ६८. घोड़ा, ६९. बहुत, ४००. वस्त्राभूषण,
१. सिंहासन, २. नौ सौ, ३. का, ४. जल्दी, ५. विवाह करो, ६. जीव से, हृदय से

उन कन्या के तात[७] ने, मोहि पठायो[८] जान।
इक दिन निमती[९] पूछियो, तब ज्ञानी इम ठान ॥ ४४९ ॥
कन्या चित्रलेखा आदि दे, परनेगो सुत सोय।
सोयी यह निव से वरे, और न जानै कोय ॥ ४५० ॥
यह कन्या तुम परनयी, वह भी परनौ[१०] राय।
चलो बेग[११] ढील[१२] न करो, तब सुनि भट हरषाय ॥ ४५१ ॥

(सोरठा)

श्रीपाल तब जाय, कन्या नव सै[१३] परनई।
राय तबै हित लाय, रतनादिक घोटक[१४] दियो ॥ ४५२ ॥
को दिन तहां थित लाय[१५], फिर चाले रणवास ले।
मारग मै को आय, नय[१६] बिनती या बिध करी ॥ ४५३ ॥
अहो राय सुनि मोय, स्थान कूंकण इक दीप है।
राजा बीजय सोय, प्रतापी प्रक्रम[१७] धनी ॥ ४५४ ॥

(दोहा)

ताके चौरासी त्रिय[१८], जसोमाल कूं आदि।
यह राणी पट धारिहें, इन आगे सब मादि ॥ ४५५ ॥
हिरणपुत्र पहलो सही, दूजो जानि सनेह।
जोधपुत्र तीजो सरु, चौथो जीत अरि जेह ॥ ४५६ ॥
कृष्णपुत्र पंचम कही, है सब गुणी अपार।
फिर तिनके कन्या भई, सोला सै[१९] गुणधार ॥ ४५७ ॥
महारुपि गुण आगली, सकल कला परबीण।
तिन सबके कछु नाम अब, लखी ये है अघहानि ॥ ४५८ ॥

---

७. पिता, ८. भेजा, ९. निमित्तज्ञानी, १०. विवाह करो, ११. जल्दी, १२. देर, १३. नौ सौ, १४. घोड़ा, १५. रुक कर, १६. नमस्कार करके, १७. पराक्रम, १८. स्त्रियाँ, १९. सोलह सौ

(चौपई)

प्रथम सुभाग सु गोरी जान, शृंगारी गोरी फिरि मान।
त्रितिये नारि पोलमी सोय, चौथी रेणादेवी जोय ॥ ४५९ ॥
सोमा पंचम जानूं सही, फेरि सम्पदा षष्टम कही।
पदमावती सातमी जोय, चित्ररेखा आठमी सोय ॥ ४६० ॥
यह आठों कन्या परबीन, नाना भांति कला गुणलीन।
और राजपुत्री बहु जान, उन आठूं प्रतज्ञा ठानि ॥ ४६१ ॥
हम चोपद भणे सलोक[२०], ताकी लखि समस्या गुण थोक।
उत्तर देत छन्द के माय, सो हमकूं परणे सुख पाय ॥ ४६२ ॥
ऐसी तीन प्रतज्ञा लही, कोटीभट इम सुनि हरषई।
तव वे कन्या के ढिंग[२१] जाय, कन्या तें ऐसे बतलाय ॥ ४६३ ॥
भो सुंदरि भाषो मन होय, तब कन्या बोली सुनु मोय।
नाम सोभाग गोरी इम कही, संसकिरत बांनी[२२] में सही ॥ ४६४ ॥

फाकी—सिद्धिः साहसतः सताम्।

अर्थ—

(दोहा)

सतपुरसन[२३] के सांस[२४] तें, सीधि[२५] होय यह जानि।
तब कोडीभट इम कहै, सुण उत्तर गुणखानि ॥ ४६५ ॥

उत्तर—

(श्लोक)

स्वात्माधीनोऽत्र सत्त्वः स्यात् बुद्धिः दैवानुसारिणी।
अत्र मा कुरुथ भ्रांतिं, सिद्धिः साहसतः सतां ॥ ४६६ ॥

अर्थ—

(चौपई)

प्राक्रम[२६] तो अपने अधीन, बुद्धि कर्म अनुसार प्रवीन।
भो सुंदरि नहीं भ्रांति उपाय, साहस तें सब ही सिध थाय ॥ ४६७ ॥

---

२०. श्लोक, २१. पास में, २२. संस्कृत भाषा में, २३. सत्पुरुषों, २४. साहस, पुरुषार्थ, २५. सिद्धि, २६. पराक्रम

(दोहा)

अब शृंगार गौरी कहै, सुनूं हमारी बात।
ताको उत्तर समुझि के, दीज्यो बुद्धि उपाय ॥ ४६८ ॥

फाकी–पश्यतो सकलं गतम्।

अर्थ–

(दोहा)

तन धन जोबन[२७] रूप सब, पिता मात सत नारि।
देखत-देखत सब गये, यह उत्तर उर[२८] धारि ॥ ४६९ ॥
जानि समस्यां फिरि कही, कोडीभट श्रीपाल।
फाकी[२९] को उत्तर दियो, पढि शलोक[३०] गुणमाल ॥ ४७० ॥

उत्तर–

(श्लोक)

न दत्तं धर्मभोगादौ कृपणेन संचितं धनम्।
द्यूतचौराग्निभूपादे, पश्यतां सकलं गतम् ॥ ४७१ ॥

अर्थ–

(चौपई)

भोग्यो द्रव्य न धर्म लगाय, तो धन देत राज में जाय।
देखत-देखत सब नसि गयो, देखत-देखत सब नसि गयो ॥ ४७२ ॥

(दोहा)

तीजी कन्या पोलमी, प्रश्न करे सुखदाय।
फाकी पढि ऐसे कहे, याको उत्तर लाय ॥ ४७३ ॥

फाकी–तेषां मिष्टं हि दुःश्रुतम् ।

अर्थ–

(दोहा)

यहे प्रश्न फाकी विषै, कन्या कियो सुभाय।
कुश्रुति[३१] मीठी जीव कूं, क्यौं लागे सुखदाय ॥ ४७४ ॥

---

२७. यौवन, २८. हृदय, २९. समस्या, ३०. श्लोक, ३१. कुशास्त्र

उत्तर— (श्लोक)

अर्हन्मुखेन्दुसंजातं, जन्ममृत्युरुजापहं।
ज्ञानामृतं न हि पीतं, तेषां मिष्टं हि दुःश्रुतम् ॥ ४७५ ॥

अर्थ— (चौपई)

जिनमुख चंद सुधा[३२] सम बान[३३], जिन नहीं पान कियो हित ठान।
ताहि कुशास्त्र लगे सुभ आय, कोडी भट इम भेद सुनाय ॥ ४७६ ॥

(दोहा)

चौथी कन्यां बोलई, रेणा देवी नाम।
फाकी में परसन[३४] करे, सो सुनियो चित लाय ॥ ४७७ ॥

फाकी—नृसिंहास्ते नरोत्तमाः।

अर्थ— (दोहा)

नरसिंघ सम उत्तम नरा, के हैं जग या मांहि।
इम सुनि उत्तर भट कहे, भणि सलोक[३५] सक नांहि ॥ ४७८ ॥

उत्तर— (श्लोक)

शीलहीनाः नराः येन, पशवः सो नरा न च।
सीलव्रताद्यैः निर्मलाः, नृसिंहास्ते नरोत्तमाः ॥ ४७९ ॥

अर्थ— (चौपई)

सीलहीन नर पसू समान, व्रत संजम तप की तहाँ हानि।
सीलादिक गुण करि जुत होय, सो नर नरसिंघ और न कोय ॥ ४८० ॥

(दोहा)

पंचमी सोमा नाम थी, तिम इम प्रश्न कराय।
सो फाकी सुनियो सही, रहस[३६] सहित सुखदाय ॥ ४८१ ॥

---

३२. अमृत, ३३. वाणी, ३४. प्रश्न, ३५. श्लोक, ३६. रहस्य

फाकी–को धर्मः क्रियते मया।

अर्थ– (दोहा)

को धर्म सिव सुखकार है, ताहि करे हित लाय।
यहै प्रश्न कन्या कियो, उतर कहे भडराय॥ ४८२॥

उत्तर– (श्लोक)

अहिंसालक्षणोपेतो, विश्वलक्ष्मीशिवंकरो।
अरिहंतभाषितो धर्मो, क्रियते मया धीजनः ॥४८३॥

अर्थ– (दोहा)

धर्म अहिंसा सुखमयी, जगत मुगती[३७] सुखदाय।
सो अरिहंत भाषत सही, ते सदा विध कराय॥ ४८४॥

फाकी–स न दृष्टः त्वया महान्।

अर्थ– (दोहा)

जो नर कबहुँ न देखियो, ताजो यह अघ जाये।
प्रश्न संपदा नृपसुता, इम कीनो सुखदाय॥ ४८५॥

उत्तर– (श्लोक)

यो धत्ते ध्यानमात्मज्ञो, स्वस्य दीपोधिसंसृतौ।
स्वनिंदा नान्यनिंदा च, स न दृष्टो त्वया महान्॥ ४८६॥

अर्थ– (चौपई)

आतमवेत्ता[३८] लंगी भाव, ध्यानरतो[३९] पर तजि करि चाव[४०]।
द्वीप समुद्र विषै सम होय, निंदे आप नहीं पर कोय॥ ४८७॥

(दोहा)

आप विषै ही रत[४१] सदा, पर तें बिरकत[४२] जान।
असै महंत न देखियो, या जग मैं तन ठांनि॥ ४८८॥

३७. मोक्ष, ३८. आत्मज्ञानी, ३९. ध्यान में लीन, ४०. अभिलाषा, ४१. लीन, ४२. विरक्त

फाकी—किं स जीवति भूतले?

अर्थ— (दोहा)

पद्मावति सप्तम सुता, प्रश्न कर्‌यो सुखदाय।
सो नर कहा जीवत सही, ता जीवन वृथ जाय॥ ४८९॥

उत्तर— (श्लोक)

दानचर्चा तपःशीलं, श्रुतं धर्मजपादिकान्।
अक्षमः स्वहितं कर्तुं, किं स जीवति भूतले॥ ४९०॥

अर्थ— (दोहा)

दान शील पूजा धरम, जप तप श्रुति[४३] नोकार[४४]।
नर तन धरि इन रत नहीं, सो जीवन नहीं सार॥ ४९१॥

फाकी—किं करोति तिया तस्य?

अर्थ— (दोहा)

नाम चंद्ररेखा सही, कन्या अष्टम जानि।
वो नर वा करि क्या करे, यह परसन[४५] उन ठानि॥ ४९२॥
तब उत्तर श्रीपाल नृप, दे श्लोक में सार।
इस परसन उत्तर सुनो, मन वच निश्चल धार॥ ४९३॥

उत्तर— (श्लोक)

षष्टिः वर्षा कितो वृद्धो, वृद्धो बाला परिणयो।
द्वियपश्चेत्तिष्ठतु सैषा, किं करोति तिया तस्य॥ ४९४॥

अर्थ— (चौपई)

बृध[४६] होय दूजि नारी विवाहि, फिरि वा ढिग त्रीय[४७] तिष्टे चाहि।
तिष्टे पै कछु काज न सरे, या बिधि प्रश्न उतर सब करे॥ ४९५॥

---

४३. स्वाध्याय, ४४. णमोकार मन्त्र, ४५. प्रश्न, ४६. वृद्ध, ४७. स्त्री,

येह आठ कन्या मुख जोय, महाबुद्धि की धारक सोय।
समस्या मांहि प्रश्न इन किये, तिन सबके भट उत्तर दिये॥ ४९६॥
तब कन्या इनकी बुधि[४८] जानि, हरषी चित लज्जा उर आंनि।
तब नृप विजय आप पुर मांहि, फिर घर निज ऊछव[४९] बहु ठांहि॥ ४९७॥
कन्या सोला सै[५०] सब लाय, श्रीपाल नृप कूं परणाय।
फिरि गज बाजि रतन भंडार[५१], पटभूषण दीने अतिसार॥ ४९८॥
कही राय विजय ल्यो राज, को दिन[५२] ह्यां[५३] तिष्टो सुखकाज।
बहु हठ राय कियो थुति लाय, श्रीपाल नहीं रहै सुभाय॥ ४९९॥
कन्या सेस दोय[५४] परणाय, मारग मै इक थल सुभ जाय।
मिली बालपुर में नृप सुता, परणी सात सै[५५] अति गुण जुता॥ ५००॥
सब ही नारि नारि संग सही, दल खेदल सेन्या अति ठही।
दीप स्थान कंकणी जानि, तहां तें कूंच[५६] कियो हित मान॥ ५०१॥
देस तिलंग विषै भट आय, कन्या सैस राय के पाय।
इत्यादिक परणी बहु नारि दलबरतनपुर आये धारि॥ ५०२॥
तहां धनपाल सुसर पै आय, मदन मँजूषा नारि सु लाय।
गुणमाला जुत इस ही थान, सुख से तिष्टत है हित मान॥ ५०३॥
कोडीभड की देखि बिभूति, बहुत राय चाले इन सुती।
सुसरादिक लखि हरषित भये, धर्म थके फल में चित ठये॥ ५०४॥
या बिध कोडीभड श्रीपाल, पुण्य तणै फल सुगुणमाल।
बहु राजन की कन्या लाय, तिष्टत महाभोग सुख पाय॥ ५०५॥
राज समूह बहुत मिलि आय, सेवै श्रीपाल के पाय।
ऐसो धर्म तणो फल जानि, सेवो बुधि[५७] धर्म सुखखानि॥ ५०६॥
दल बरतन पटणां के मांहि, बनमाला के घरि सुख पाहि।
तिष्टत सुख श्रीपाल नरेस, सब सुनि कथा और सुख भेस॥ ५०७॥

---

४८. बुद्धि, ४९. उत्सव, ५०. सोलह सौ, ५१. हाथी, घोड़ों और रत्न के भण्डार, ५२. कुछ दिन, ५३. यहाँ, ५४. दो हजार, ५५. सात सौ, ५६. प्रस्थान, ५७. बुद्धिमान

(छंद चाल)

अध राती[५८] एक दिन भाई, कोडीभड उर चिंता आई।
मैं तो सुख काल गमाऊँ, नाना विध के सुख पाऊँ ॥ ५०८ ॥
तिय मात तणी[५९] सुध नांहि, उन भूलि गयो सुख पांहि।
अब शीघ्र उजैणी[६०] चालूं, मरजाद बचन[६१] मो पालूं ॥ ५०९ ॥
बारे बरस[६२] पूरे थाय, मोकूं दिन आद[६३] न आय।
वह मैणां सुंदरी नारि, अर्जिका होगी अवधारि ॥ ५१० ॥
सुसरो धनपाल बुलायो, ताकूं सब भेद सुनायो।
चोविधि सेन्या मिलवाई, बहु लछी[६४] लई सुखदाई ॥ ५११ ॥
भट सब रणवास मिलायो, ताकूं सब भेद सुनायो।
कोडीभड सब बतलाई, फिरि कूंच[६५] कियो सुखदाई ॥ ५१२ ॥
दर कूंचा चाले आयी, देस सोरठ[६६] पहुँचे जाई।
गिरनार परबत पै आये, अष्टानिक[६७] के दिन थाये ॥ ५१३ ॥
फागुण सुदी आठै[६८] जानूं, गिरनारि परबत सुख धानूं।
भट तीन प्रदक्षणा दीनी, महाराग भक्ति करि भीनी ॥ ५१४ ॥
फेरि नेमि जिनेश्वर पूजे, जब पूरबले[६९] अघ[७०] धूजे[७१]।
दिन आठ महासुभ मांहि, बसु[७२] वास[७३] किये गिर ठांहि ॥ ५१५ ॥

(चाल 'जिन जप जिन जप जीवड़ा' की)

आठ दिवस गिरिनारि ये, पूजे श्री जिनराय जी।
अंते पुर जुत भक्ति तें, नृत्त कियो अधिकाय जी ॥
धर्म थकी सुख ऊपजे ॥ ५१६ ॥
थुति करि के पुन्य उपारज्यो, सुख तें दिन आठ बिताय जी।
पारणे दिन पूजा करी, सुभ दान दिये अधिकाय जी ॥
धर्म थकी सुख ऊपजे ॥ ५१७ ॥

---

५८. आधी रात में, ५९. पत्नी और माता की, ६०. उज्जैन, ६१. मर्यादा वचन, ६२. बारह वर्ष, ६३. याद, ६४. लक्ष्मी, ६५. प्रस्थान, ६६. सौराष्ट्र, ६७. अष्टाह्निका, ६८.फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, ६९. पुराने, ७०. पाप कर्म, ७१.डरे, भागे, खिर गये, ७२. आठ, ७३. उपवास

फिरि वहां करि पारणे, कूंच कियो उमगाय जी।
मारग में बहु राजई[७४], जीते भुज बल लाय जी॥
धर्म थकी सुख ऊपजे॥ ५१८॥
फिर मारगे कन्या भूप की, परणी पांच सै[७५] जाण जी।
अहीछतपुर[७६] को राजई, अरिमरदन नाम बखांनु जी॥
धर्म थकी सुख ऊपजे॥ ५१९॥

(दोहा)

भूपति अति बलवानरो, अरिमरदन अस नाम।
महागर्व करि सो रहै, सो भी जीत्यो ठांम॥ ५२०॥
तब भूपति भंग मान सै, विरक्त भयो अधिकाय।
जगत भोग दुख जानिके, दीक्षा कूं उमगाय॥ ५२१॥
बैरदमन लघु भ्रात कूं, राजभार बतलाय।
आप जसोधर मुनि ढिगै, भये जती[७७] सुख पाय॥ ५२२॥
बैरदमन भूपति तबै, श्रीपाल ढिग आय।
सेवक ह्वै तन राखिय, और सुनो अधिकाय॥ ५२३॥
कोटिभट भूपति फिरत, मरहट[७८] देस सु आय।
उनकी कन्या पाँच सै, परणी अति सुखदाय॥ ५२४॥

(दोहा)

फिरि फिर तो गुजरात के, सब नृप चरण नमाय।
उनकी कन्या सात सै, लयी भुजाबलि जाय॥ ५२५॥
मेदपाट सुभ देस के, भूपति सेवक थाय।
कन्या तिनकी दोय सै[७९], परणी हरष बड़ाय॥ ५२६॥
फिरि इक वासी राय की, कन्या छिनवे[८०] सोय।
कोडीभट परणी सही, सेंवक कीने सोय॥ ५२७॥

---

७४. राजाओं को, ७५. पाँच सौ, ७६. अहिच्छत्रपुर, ७७. यति, मुनि, ७८. महाराष्ट्र, ७९. दो सौ, ८०. छियानवे (९६)

फिर भीलादिक नीच नृप, तिनकूं चरण नमाय।
सेवक करि तिन पे सही, भेंट लई सुखदाय॥ ५२८॥

(अडिल्ल)

या विधि पुन्य उदै जस[८१] भू[८२] परगट भयो।
राय महामंडलेस्वर को तिन पद लयो॥
बहुत बिभूति मिलाय कटक[८३] चौकी दई।
कही राति सेन्या की रक्षा कर सही॥
आप एकाकी हो अपर्छन[८४] घरि गये॥
तन बल तें गढ कूदि जाय मिंदर[८५] ठये॥ ५३०॥*
ता मिंदर में मात कमलप्रभा सही।
मैणां सुंदरी सहित महासुख ठही।
तहां मिंदर द्वार जाय ठाडो[८६] रह्यो।
बारह वर्ष में वही दीन[८७] बाकी थयो॥ ५३१॥
मैंणां सुंदरी तबै सासु कूँ इम कहें।
भो माता तुम पुत्र न आयो कित रहैं।
सब मरजाद विषै रजनी बाकी रही।
अब हूँ बळे प्रभात बरत ग्रहस्यूं[८८] सही॥ ५३२॥
मात कहै सुनि नारि पुत्र मेरो सही।
सोच[८९] करे मति सीघर ही आवत कही।
को दिन तो थंभि[९०] सुता तबै सुंदरी कहै।
भो सुख[९१] तो मा गये अबै सिव सुख चहै॥ ५३३॥

(चौपई)

मात कहै पुत्री सुनि बात, देखि हाल क्या ह्वै परभात।
तेरे तात ऊपरे कोय, बैरी दल ले आयो सोय॥ ५३४॥

---

८१. यश, ८२. पृथ्वी, ८३. सेना, ८४. गुप्त रूप से, ८५. राजमहल, ८६. खड़ा, ८७. दिन, ८८. मैं प्रातःकाल होते ही दीक्षा ग्रहण करूँगी, ८९. चिन्ता, ९०. रुक, ९१. संसार-सुख

*मूल प्रति में क्रमांक ५२९ नहीं मिलता और यदि लगावें तो दो पंक्तियाँ कम पड़ती हैं।

ना जाने उगते दिन सही, सुभ असुभ कहा कहा भही।
या विधि सास बहू बतलाय, इनके बचन सुने भटराय ॥ ५३५ ॥
तब श्रीपाल बोलियो सही, हे प्रिय पाट[६२] खोलि इम कही।
तब सुंदरी पति के बच जानि, हरषे चित पट खोले आनि ॥ ५३६ ॥
कोडीभड मिंदर में गयो, मात चरण कूं नयतो[६३] भयो।
फेरि कही पिछली सब बात, सुनि माता सुंदरि सुख पात ॥ ५३७ ॥
सुंदरी मात कटक कूं जोय,[६४] हरषी अंगन मै सो जोय।
मात कही सुत सुनि मो बैन, भव लखमी[६५] क्यां पाई ऐन ॥ ५३८ ॥
तू सिव लखमी को भरतार[६६], ज्ञान लछी पासी[६७] निरधार।
अबिनासी रिधि[६८] पासी सही, इम कह भट को मद छेदई[६९] ॥ ५३९ ॥
माता श्रीपाल कूं सही, ज्ञानमई उपदेस जु कही।
धन्य मात ऐसे जु कहै, सुत के सिवमारग[५००] कूं चहै ॥ ५४० ॥
श्रीपाल माता त्रिय लेय, फौज विषै आये तब जेय।
सब नारिन कूं भेद बताय, तब सहु[१] आनि लगी इन पाय ॥ ५४१ ॥
माता सब त्रिय सेन्या जोय, सुंदरि जुत अति हरषित होय।
पूजा सीधचक्र प्रभाय[२], ऐसी रीध[३] लई इन आय ॥ ५४२ ॥
आठ हजार नारि मध्य आंन, मैणा सुंदरी पटत्रिय[४] जान।
बड़ी विभूति धर्म तें पाय, तातें धर्म जोग्य सुखदाय ॥ ५४३ ॥

(दोहा)

मैणां सुंदरी तात[५] पै, महारोस[६] उपजाय।
कोडीभड निज पति थकी, इम भाखी[७] तब आय ॥ ५४४ ॥
भो प्रभु मेरे तात ने, तुम कूं मोहि व्याहि।
क्रोध थकी तुमकूं दई, महादुखी मन लाय ॥ ५४५ ॥

---

६२. द्वार, ६३. झुक कर नमस्कार करना, ६४. सेना को देखकर, ६५. सांसारिक वैभव, ६६. तू तो शिवलक्ष्मी का पति होकर, ६७. ज्ञानलक्ष्मी प्राप्त करेगा, ६८.. ऋद्धि, ६९. अभिमान नष्ट करना, ५००. मोक्षमार्ग, १. सभी, २. प्रभाव से, ३. ऋद्धि, ४. पटरानी, ५. पिता, ६. अत्यन्त क्रोध, ७. कहा

करम परिक्षा कारनें, असुभ जांनि यह थान।
तुमे मोहि परणा दई, मैं तातें दुख मान ॥ ५४६ ॥

(चौपई)

तातें मोहि करो उपसांति, देहो डँड वाकूँ बहु भाँति[८]।
या विधि वाकूं[९] कहि खिनवाय[१०], कै तों राड[११] करो तुम आय ॥ ५४७ ॥
कै कामली काँधे[१२] पर डारि, फिरि कर मांहि कुहाडी[१३] धारि।
भेष गवाल धारि मिलि आय, पड़ो आय पद ढील न लाय ॥ ५४८ ॥
या विधि तुम कहि भेजो नाथ, कहो बांधि आवे ज्यों हाथ।
श्रीपाल भाषे तव राय, हमकूं यह नहीं जोग्य कुंहाय ॥ ५४९ ॥
तब मैंणां सुंदरी हठ लाय, पत्री लखि[१४] इक दूत खिनाय[१५]।
सो चलि दूत राय पै गयो, प्रजापाल कूं नयतो भयो[१६] ॥ ५५० ॥
कोडीभड को लेखक दियो, राय तबै हित करि पूछियो।
अहो दूत यह को है राय, तिन बन में डेरे करवाय ॥ ५५१ ॥
कौन राय कहाँ तिष्टत सही, किसे अरथ आये या कही।
तब सुनि दूत कहै यूं राय, यह भूपति दधि[१७] मध्य तें आय ॥ ५५२ ॥
अंतर दीप समुदतें जोय, तहां को बासी यह नृप सोय।
बहु रायन को[१८] नायक जानि, अति जोधा[१९] रूपी बलखानि ॥ ५५३ ॥
दीप समुद्र तणी लखी[२०] सोय, भोगत इतकूं[२१] आयो जोय।
मारग मैं बहु भूपति आय, सेवक बणया[२२] वे सिर नाय ॥ ५५४ ॥
कही दूत सुनि भूपति मोही, बांचो पत्री सेवक होय।
आज्ञा उनकी सिर पर धरो, और भांति कबहूं नहीं करो ॥ ५५५ ॥
कागद बांचि राय कोपियो[२३], महागर्व जुत[२४] उत्तर दियो।
वाकूं[२५] को मानत है सही, बलहीणे बस कीने कही ॥ ५५६ ॥

---

८. उनको बहुत प्रकार से दण्ड दो, ९. उसको, १०. कह कर भेज दिया, ११. अथवा युद्ध, १२. कन्धे पर कम्बल, १३. कुल्हाड़ी, १४. पत्र लिखकर, १५. भेजा, १६. नमस्कार किया, १७. समुद्र, १८. राजाओं का, १९. योद्धा, २०. लक्ष्मी, २१. इधर, २२. बने, २३. क्रोधित हुआ, २४. बहुत घमण्ड के साथ, २५. उसको

मेरो बल दिखलाऊँ ताहि, खबर पड़ैगी भिड़सूं भाहि।
ऐसे क्रोध बचन नृप कहै, सुनि मंत्री इम[२६] भाषत भहै॥ ५५७॥
अहो राय वह अति बलवान, तातें क्रोध जोग्य नहीं जान।
आप बली तें कोप जु करै, सो जम[२७] के घर कूं संचरै॥ ५५८॥
वह भूपति.....बल खानि, तासूं सकल वचन हित ठानि।
वाकी आज्ञा होय सु करो, समझि आनि अपनो तन धरो॥ ५५९॥
तबै राय मंत्री वच मांनि, दूत थकी इम भाखी वांनि।
तुम नृप पै हम की थुति करो, हुकम[२८] तिहारो हम सिर खरो॥ ५६०॥
वोठ कांमली कंध कुहाड़ी[२९], आवे नृप तणे दरबारि।
सुनिके दूत गयो हरषाय, कोडीभड कूं भाषी जाय॥ ५६१॥
श्रीपाल तव अपनी नारि, करी सांति सुभ बचन उचारि।
तू कहै ता बिद[३०] आवै राय, सुन सुंदरि मन मैं मुसकाय॥ ५६२॥
तबै फेर इक दूत खिनाय[३१], जाय कह्यो हस्ती चढ़ि आय।
बड़ी विभूति संग ले सही, बहु ऊछव[३२] तें आयो सही॥ ५६३॥
तब राजा निज सेना आन, गज चढ़ के आयो हित ठांनि।
श्रीपाल तब आवत जोय[३३], सनमुख चाल्यो हरषत होय॥ ५६४॥
कोडीभट बहु रिध[३४] जुत होय, परजापाल थकी मिल सोय।
कही राय मोकूं तूं जानि, श्रीपाल मोकूं[३५] पहचानि॥ ५६५॥
तब राजा बहु हरषत भयो, परसपरे मिल सुख अति लयो।
श्रीपाल सुसरो के पाय, लग्यो महा वीनै[३६] उपजाय॥ ५६६॥
श्रीपाल की देखि बिभूति, प्रजापाल लज्ज्यो बिन कूंति।
फिर भूपति मन मैं हरषाय, इक गज चढ़े दोऊ सुभ राय॥ ५६७॥
बहुत विभूति सोभकर सही, पुर परबेस[३७] कियो अधिकही।
सबै लोक भट[३८] कूं अवलोय, मन मांहि अति हरषत होय॥ ५६८॥
अंगरक्षक सात सै[३९] सोय, आय नये[४०] कोडीभड जोय॥ ५६९॥'

---

२६. ऐसा, २७. यमराज, मृत्यु, २८. आज्ञा, २९. कुल्हाड़ी, ३०. उसी प्रकार से, ३१. भेजा, ३२. उत्सव, ३३. देखकर, ३४. ऋषि, ३५. मुझको, ३६. विनय, ३७. नगर-प्रवेश, ३८. श्रीपाल, ३९. सात सौ, ४०. झुके

*मूल प्रति में ही यहाँ एक पंक्ति कम मिलती है।

महामंडलेस्वरी की बिधि पाय, बहु भूपति को नाथ[४१] कहाय।
सुख करि तिष्टै नगर उजैण[४२], भई लछी[४३] बहु जुत अतिसेन[४४] ॥ ५७० ॥
इक दिन भट इम चिंता लाय, देस आपनु यादि जु आय[४५]।
जेते[४६] काका कूं रण माहि, जीतूं नांहि जिते सुख नांहि ॥ ५७१ ॥
जाय के राज हमारो करौं, तब मन मैं हम आनन्द धरौं।
ऐसे सोच ठानि श्रीपाल, कही सुसर कूँ सुनि गुणमाल ॥ ५७२ ॥
भो राजन अब अपने देस, जनम भोमि[४७] जावैं सुभ भेस।
काका कूं जय कुल निज राज, करिहै और न कोय इलाज ॥ ५७३ ॥
प्रजापाल भूपति तब कही, ह्यां ही राज करो तुम सही।
तुम तिष्टे मोकूं सुख होय, मेरी यह बिनति चित जोय ॥ ५७४ ॥
श्रीपाल तब ऐसे कही, एक वार तो जाऊँ सही।
सीख[४८] माँगि महा रीध[४९] मिलाय, नानाविध बाजित्र[५०] बजाय ॥ ५७५ ॥
आठ हजार राय जुत होय, और सुभट बहुते सँग जोय।
सेन्या चतुरंग साजि अपार, तजि उजेणी करि कूंच[५१] सार ॥ ५७६ ॥
चंपापुर दिस चाले सही, सब ही नारि संग निज लही।
मारग मैं बहु भूपति आय, ते भुजबल तें जय पद नाय ॥ ५७७ ॥
महा सेन जुत चंपापुरी, पहुँचे जाय बन थित करी।
फिर काका पे दूत खिनाय, वीरदमन पै दूत सु जाय ॥ ५७८ ॥
कही राय मेरी सुनि बात, श्रीपाल आयो सुखदात।
जानि भतीजो तेरो सही, बाल अवस्था निकल्यो सही ॥ ५७९ ॥
सो अब महालछी हू पाय, जीति किये सेवक बहु राय।
आप राय कोडीभड राय, सो अब आयो अति बल ठांय ॥ ५८० ॥
वाके तात[५२] तणूं सब राज, बाकूं[५३] सुख देहूं तज लाज।
वाकी अज्ञां सिर पर लेह, सुख तें तन धार्‌यो सब येह ॥ ५८१ ॥
तुमकूं जागा[५४] देहु सो खाहु, नांहि[५५] देसांतरी उठि जाहु।
कै लड़ने की करो उपाय, इम सुनि बीरदमन रोसाय[५६] ॥ ५८२ ॥

---

४१. स्वामी, ४२. उज्जयिनी, ४३. लक्ष्मी, ४४. बड़ी सेना के साथ, ४५. अपना देश याद आया, ४६. जब तक, ४७. जन्मभूमि, ४८. आज्ञा, ४९. ऋद्धि, ५०. बाजे, ५१. प्रस्थान, ५२. पिता का, ५३. उसको, ५४. जगह, ५५. अथवा, ५६. क्रोधित हुआ

सुभट थकी इम भाखे बेन, अहो दूत सूरामे ऐन।
एकाएक शत्रु कूं जऊँ, और किसी को भय नहीं लऊँ॥ ५८३॥
जाय कहो अपने नृप पासि, करूँ जुद्ध अति बल की रासि।
तबै दूत बोल्यो सुनि राय, यह तुझ टेक[५७] नहीं सुखदाय॥ ५८४॥
तोसे[५८] राय हजार सही, सेवत चरण कँवल उस कही।
मालवादि सब देस महान, तिनके बड़े भूप बलथान॥ ५८५॥
सो सब श्रीपाल की लार[५९], बड़े-बड़े जोधा बलधार।
आप राय कोडीभट सही, तातें जुद्ध किसी बिध ठही॥ ५८६॥
यह हठ तुम छाँडो नरराय, बीरदमन तब कही सुनाय।
अहो दूत उनकूं जा कहो, जुद्धकरण को उद्यम ठहो॥ ५८७॥
मेरो बल दिखलाऊँ सही, करि संग्राम महाबल ठही।
या विधि मदधारक[६०] बच लाय, दूत विदा करि दियो सुभाय॥ ५८८॥
बीरदमन नए भीरी छाय, आवध सकल तजे मद लाय।
सब सेन्या ले अपनी लार[६१], पुर बारे[६२] निकसे निरधार॥ ५८९॥
जुद्ध करन कूं सनमुख गयो, तब श्रीपाल कने भट चयो।
भो भूपति नायक सुनि बैन, अरि जुध कूं आयो ले सैन[६३]॥ ५९०॥
श्रीपाल अरि आवत जोय, सब सेन्या ले सनमुख होय।
दोऊ सेन जूधन कुं भई, तब मंत्री ने मसलत[६४] ठई॥ ५९१॥
दोऊ तरफ तणे भट सोय, या बिधि मसलत करते होय।
चरम सरीरी दोऊ राय, दोऊ ही कोडीभड राय॥ ५९२॥
इनमें नास न काको[६५] होय, बृथा सेन्य मरेगी दोय।
तातें उभउ[६६] जुद्ध जू करे, जीते सोह[६७] नृप पद धरे॥ ५९३॥
इम बिचारि भूपन सूँ कही, राय तबे मन चीते[६८] सही।
ठीक अरज[६९] मंत्री करवाय, हम दोउ चरम सरीरी राय॥ ५९४॥
हम नहीं मरें सेन मर जाय, सब जन दुखी होय इम भाय।
दोऊ राय दया उर आनि, मंत्रिन की बिनति सब मानि॥ ५९५॥

---

५७. हठ, ५८. तेरे जैसा, ५९. साथ में, ६०. अभिमानपूर्ण, ६१. साथ में, ६२. नगर से बाहर, ६३. सेना, ६४. सलाह, ६५. चाचा, ६६. दोनों, ६७. वही, ६८. विचार किया, ६९. प्रार्थना

बिगर सेन दोऊ नर राय, जुद्ध करन लागे उमगाय।
दोऊन मांहि जुद्ध अति भयो, कायर कूं भयकारी ठयो॥ ५९६॥
जुद्ध करत अति लागी वार[७०], दोऊ दिस वाणन की मार।
सस्त्र विद्या में जुग[७१] परबीन, दोनूं महासुभट नहीं दीन॥ ५९७॥
दोन्यूं ने आवध[७२] तजि दिये, गज ज्यों मल जुध[७३] करते भये।
बीरदमन कूं या जुध माहि, श्रीपाल जय बांध्यो ठाहि॥ ५९८॥
श्रीपाल की सेना मांहि, बाजे जीत दुंदभी थाहि।
तब सज्जन जन कूं सुख भयो, जुध तबै ह्वैतो रह गयो॥ ५९९॥
तब ही श्रीपाल पिछताय, काका के बंधन छुड़वाय।
छांड़ि दोष बिनती इम करी, तुम मो पिता सारखे खरी॥ ६००॥
बालक बुधि मैं करि दुख दियो, सो मैं काज अजोग[७४] सु थयो।
तुम हो बड़े क्षमा मोहि करो, यह राज तुम ही सब धरो॥ ६०१॥
अपनी परपाटी यह राज, सो तुम राय लहो तजि लाज।
तब सुनि बीरदमन इम कही, हम यह राज न बांछे सही॥ ६०२॥
महाधीर मन में बेराग, सिव के राज तणी अति लाग।
बिरकत भयो भव भोग निवार, विषधर विष से जानि बिडार॥ ६०३॥
यहै राज नहिं अघ की खानि, नरक देन कूं पंडित जांनि।
यह निंद्य पद राज करूँ, अब उद्यम करि सब अघ हरूँ॥ ६०४॥
मैं तो आज भयो धन[७५] सही, तुम प्रसाद बैराग्यो कही।
तुम सो हितू[७६] न दूजो कोय, तू तप कूं कारन मो होय॥ ६०५॥
तातें तुम तें सब परकार[७७], क्षमा हमारी है निरधार।
ऐसे मिष्ट बचन कहि राय, बीरदमन नृप तप कूं धाय॥ ६०६॥
साग्राचारजि[७८] के ढिग धाय[७९], पूजे हरष हरष मुनि पाय।
अंतर बाहिर परिग्रह धारि, भयो मुनि जिनदीक्षा धारि॥ ६०७॥
सिव अभिलाषी बहु तप करे, पूरब लगे कर्म कूं हरे।
मान गये जिन दीक्षा होय, तो वह मान गयो नहि जोय॥ ६०८॥

---

७०. देर, ७१. दोनों, ७२. आयुध, शस्त्र, ७३. युद्ध, ७४. अयोग्य कार्य, ७५. धन्य हुआ, ७६. हितैषी, ७७. सब प्रकार से, ७८. सागराचार्य, ७९. दौड़ कर, जा कर

यह तो कथनि रह्यो इस थान, अब सुन श्रीपाल गुण खान।
बड़ी विभूति राय बहु लार, इंद्र समान लेय करि लार ॥ ६०९ ॥
नग्र[८०] विषै परबेस कराय, पुर जन मिलि सब ऊछव[८१] धार।
नगर विषै भूपनि दरबारि, तोरण मंगल बहुबिध धार ॥ ६१० ॥
घर घर ध्वजा खड़ी करवाय, नृत्त गीत बाजे बहु लाय।
इत्यादिक सब पुर में सही, कियो उछाह सबै सुख ठही ॥ ६११ ॥
या विध श्रीपाल नृप राय, पूरव पुन्य उदे तब आय।
महामंडलिक तणु पद लयो, बड़ी विभूति तणूं पति भयो ॥ ६१२ ॥
प्रजा पालत नीति उपाय, सब जन कूं सुख करता थाय।
धर्म ध्यान सेवत श्रीपाल, सुख सूं तिष्टत हे गुणमाल ॥ ६१३ ॥
इक दिन राय सभा के मांहि, बहुत बिभूति सहित तिष्टाय।
सिंघपीठ[८२] अति सोभे राय, एते[८३] इक बनमाली आय ॥ ६१४ ॥
षटरितु[८४] के फल फूल सु आनि, भूपति ढिग मेले[८५] थुति ठानि।
बनमाली भाषे सुनि देव, महाभाग तुम उदै सुमेव[८६] ॥ ६१५ ॥
अहो राय तुम पुण्य प्रभाय, श्रुतसागर मुनिवर बन आय।
त्रिय ज्ञानी[८७] बिन कारण बंधु, दरसन तें भागे दुख धंधु ॥ ६१६ ॥
सो उद्यान में तिष्टे आय, तिन पुन सर सूके जल थाय[८८]।
षट रितु के फल फूले सु फले, जाति बिरोध जीव तजि रले[८९] ॥ ६१७ ॥
सुनि इम भूपति हरषित भयो, मानूं रंक जीव निधि पयो।
तन पट भूषन खुसि अति होय, बनमाली कूँ बकसे[९०] सोय ॥ ६१८ ॥
जा दिस मुनिबर आये जांनि, सात एक ताही दिस आंन।
मुनि कूं नयो परोखि[९१] सु जाय, महा उछव[९२] जुत बन कूं जाय ॥ ६१९ ॥
वृक्ष असोक तले सिल सार[९३], प्रासुक लखि मुनि तिष्टे धार।
सरब जीवरख दयानिधान, धर्म मूर्ति लखि के मुनि ध्यान ॥ ६२० ॥

---

८०. नगर, ८१. उत्सव, ८२. सिंहासन, ८३. तभी, ८४. षड्ऋतु, ८५. रखे, ८६. स्वयमेव, ८७. तीन ज्ञान के धारक, ८८. उनके पूण्य से सूखे सरोवर में पानी आ गया है, ८९. जन्म-जात विरोधी जीव भी बैर-भाव छोड़कर परस्पर क्रीड़ा कर रहे हैं, ९०. दिये, ९१. परोक्ष, ९२. उत्सव, ९३. श्रेष्ठ शिला पर

भक्ति आनि परदक्षणा[९४] दई, श्रीपाल नृप मुनि कूँ नई[९५]।
अष्ट द्रव्य तें पूजे पाय, जती[९६] तवे धर्म वृद्धि कहाय॥ ६२१॥
श्रीपाल मुनि के ढिंग ठयो, ऐसी बिध तें पूछत भयो।
भो भवि जीव उधारन हार[९७], मोपे कृपा करो तुम सार॥ ६२२॥
धर्म कहा[९८] याको[९९] फल कोय, कैसे धर्म सधे कहो सोय।
तव रिष[६००] कहै सुनू नृप कांनि, धर्म तणू अब सुण व्याख्यान॥ ६२३॥
जग दधि[१] डूबत काढे सोय, मेले सिव थांनक सुख जोय।
याकूँ धर्म कह्यो जिनदेव, सो धर्म दोय भाँति सुनि लेव॥ ६२४॥
इक श्रावक इक मुनि कूं जांनि, श्रावक धर्म सुर्ग[२] सुखदान।
मुनि ध्रम सिध थानक फल देय, यातें नृप तू मुनि ध्रम सेय॥ ६२५॥
मुनि मुख सेती अमृत चयो[३], श्रीपाल पीके धन्य भयो।
फिरि मुनि कूं नृप सीस नमाय, या बिधि प्रश्न किये सुखदाय॥ ६२६॥
हे कृपानिधि सागर जती, तो दरसन अघ रहे न रती।
मैं महा मंत्र मंडलेस्वर जांन, सो कैसो प्रगट्यो पुनि भान॥ ६२७॥
कौन पुन्य कोडीभट भयो, को अघ राज भिष्ट मो भयो।
कोढ भयो किस अघ तें सही, वांणिक क्यों दधि नाख्यो कही॥ ६२८॥
कह्यो चंडाल स्वजाती मोहि, यो कैसा अघ को फल होहि।
को पुन्य तें एतो धन पाय, मैणां सुंदरि पै हित लाय॥ ६२९॥
एते प्रश्न किये नरराय, तब मुनि भाषी दया उपाय।
भो आवली[४] तेरी सुणि भूप, पुन्य पाप फल मंडित रूप॥ ६३०॥
यो ही भरत खेत्र सुभ थान, तामें बिजयारध[५] पहचान।
तहां रतनसंचय पुर सार, श्रीकांत नृप खग[६] बल धार॥ ६३१॥
ता घरि श्रीमति नारी जान, महासती गुण रूप निधान।
जिनपूजा सुभ पातर दान[७], अणूब्रत्त[८] पालै गुणवान॥ ६३२॥

---

९४. प्रदक्षिणा, ९५. नमस्कार किया, ९६. मुनिराज, ९७. हे भव्य जीवों के उद्धार करने वाले, ९८. क्या है, ९९. उसका, ६००. मुनि, १. संसार-समुद्र, २. स्वर्ग, ३. अमृत की वर्षा हुई, ४. भवावली, जन्म-जन्मान्तर, ५. विजयार्द्ध पर्वत, ६. विद्याधर, ७. पात्रदान, ८. अणुव्रत

इत्यादिक धर्म सेवे सार, पुन्य उपावै सिव स्वर[९] कार।
या पति श्रीकांत नृप सोय, विषै अंध[१०] अधर्म सो चित जोय॥ ६३३॥
केवल एक भोग रत रहैं, पुन्य पाप को भेद न लहै।
इक दिन राय गयो बन थांनि, देखे तहां मुनिवर गुणखांनि॥ ६३४॥
नाम सुगुप्त अचारय सही, देखि राय नय[११] करि थुति[१२] ठही।
तव मुनि तुछ संसारी जोय, धर्म सुनायो जिन को सोय॥ ६३५॥
पूजा दान वृत्त सुखदाय, इह परलोक सकल सुख पाय।
ऐसो धर्म सेय भूपाल, विषय बिष सम तजि गुणमाल॥ ६३६॥
विषय जर्ख भीलावो जान, संग किये ते ये दुखखांन।
ताते करुणाजुत धम सोय, सेय[१३] राय भो भो[१४] सुख होय॥ ६३७॥
या बिधि राय पाय उपदेस, लये बृत्त श्रावक सुभ भेस।
सुभाचार धम्र निमति कराय, फिरि मुनि बंदि[१५] नगर कूं आय॥ ६३८॥
केते दिन ब्रत पाले सही, फेरि निमत खोटो[१६] मिलि गही।
दुष्ट जीव सँग पाय नरेस, पाप किये नाना दुख भेस॥ ६३९॥
छाँड़ि बृत्त[१७] विषया रत[१८] भयो, नाना अघ ते सेवत ठयो।
सिंघ[१९] साँप विष को संग करो, पै नहीं दुष्ट तणो संग खरो॥ ६४०॥
इनके संग तें इक भव[२०] मरे, पाप थकी भव भव[२१] दुख भरे।
तातें पापिन को सँग नाँहि, कीजे जो निज तन हूँ जाहि[२२]॥ ६४१॥
पड़नो सिखर कूप बर जानि[२३], सस्तर[२४] तें मरनो सुभ ठांनि।
अगनिपात[२५] अहिमुख[२६]बर हाथ, पै नहीं ठीक कुबुधि[२७] को साथ॥ ६४२॥
कहे मुनी सुनि नृप श्रीपाल, पूरब बृत कियो भंग वाल।
ता अघ भिष्ट[२८] राज तें भयो, अब सुनि और जु आगे थयो॥ ६४३॥
वही राय श्रीकांत सु जांनि, सुभट सात सै संग सुभाय।
बनथलि अवधि मुनि लखि राय, लपत मैल देखी मुनिकाय॥ ६४४॥

---

९. मोक्ष और स्वर्ग, १०. विषयान्ध, ११. प्रणाम करके, १२. स्तुति की, १३. सेवन करके, १४. जन्म-जन्म में, १५. वन्दना करके, १६. बुरा निमित्त, १७. व्रत छोड़कर, १८. विषयों में लीन हुआ, १९. सिंह, २०. एक जन्म में, २१. जन्म-जन्म में, २२. अपना शरीर जाए तो भी, २३. पहाड़ से कुँए में गिरना ठीक समझो, २४. शस्त्र, २५. अग्नि में गिरना, २६. सांप के मुंह में हाथ डालना भी अच्छा समझो, २७. दुर्जन, २८. भ्रष्ट

नगन मुनी ऐसो लखि भूप, निंदा करी महादुख रूप।
कही मुनी यह कोढी सही, इत्यादिक दुख बचन जु कही ॥ ६४५ ॥
कहे मुनी सुनि भो श्रीपाल, ता अघ[२९] कोढ भयो दुखमाल।
वै ही सात सै भट इत आय, सब तन कोढ़ लयो दुखदाय ॥ ६४६ ॥
तातें मुनि निंदा दुखदाय, भूलि न कीजे भो नर राय।
धरम तणी निंदा को करे, ताको दुखफल को उचरे ॥ ६४७ ॥
सो धर्म सेये सिव सुर[३०] होय, निंदा तें नरकादिक जोय।
तन की घात होत जो सही, तोहु धर्म निंदा नहीं कही ॥ ६४८ ॥
अब सुनि और कथन मन लाय, पापमई श्रीकान्त सु राय।
सर की तीर मुनी अवलोय[३१], कायुत्सर्ग ध्यान जु सोय ॥ ६४९ ॥
उत्तम क्षमा धारि मुनिराय, तिनकूं लखि इम बचन कहाय।
यह कबहु सनान[३२] नहीं करे, रहे मलिन तन इम ऊचरे ॥ ६५० ॥
या मुनि कूं सपडावो[३३] सही, इम कही सरोवर मुनि नांखई[३४]।
मुक्तित्रिय चितरे जब मुनी, जल मैं डारि निकासे गुनी ॥ ६५१ ॥

(दोहा)

कहे मुनी श्रीपाल कूं, ता अघ तें तोहि जानि।
बाणिन मिलि दधि नाखियो[३५], अब सुनि और स्वज्ञान[३६] ॥ ६५२ ॥
फिरि मन करणा[३७] जाय के, देय छोड़ि मुनिराय।
ताँ फल भुजबल दधि तर्‌यौ, यह निहचै मन लाय ॥ ६५३ ॥
अलप[३८] पाप भी दुख करे, तो तजिये अघ घोर।
फिर इक दिन श्रीपाल नृप, देखि मुनी गुन मोर ॥ ६५४ ॥
मुनि तन तपते खीण अति, नसाजाल झलकांहि।
मानु बृक्ष दाहै जर्‌यौ, देखि राय दुख पाय ॥ ६५५ ॥
तन खीनो[३९] मन उनमनो[४०], भव सुख[४१] नांहि सुहाय।
सिव त्रिय[४२] कारन सकल सुख, छाँडि दिये अघदाय ॥ ६५६ ॥

---

२९. पाप से, ३०. मोक्ष एवं स्वर्ग, ३१. देख कर, ३२. स्नान, ३३. स्नान कराओ, ३४. डाल दिया, ३५. डाल दिया, ३६. सुज्ञान, ३७. करुणा, ३८. अल्प, थोड़ा, ३९. शरीर क्षीण है, ४०. मन उदास है, ४१. संसार-सुख, ४२. मोक्षरूपी स्त्री

ऐसे मुनि श्रीकान्त लखि, दुठ चित निंदा लाय।
कही खडो चंडाल यह, इम कहि पाप उपाय॥ ६५७॥
ता अघ तें चिंडाल मिलि, तोकूं कह्यौ चिंडाल।
तातें धर्मी पुरुष कूं, ... ॥ ६५८॥
.....सुनूं राय मन लाय।
यह बातें श्रीकांति त्रीय[४३], श्रीयमती सुनवाय॥ ६५९॥
सुनते अति बिरकत[४४] भई, कही धीक भरतार[४५]।
ऐसे पापी पति थकी, विधवा भल निरधार॥ ६६०॥
जही दूठ निंदा करी, तासु कहा मो काम।
तातें हूं सब छांडि के, तप लहुंगी सुखधाम॥ ६६१॥
तब को जन जा नृप थकी, कही राय सुनि बात।
तुम कूं संग ग्रह व्रत तजे, सुनि राणि दुख पाय॥ ६६२॥
पटराणी बिरकत भई, पापी कंथ निहारि।
घर तजि के तप धारसी[४६], यह निहचै मन धारि॥ ६६३॥
इम सुनि भूपत बेग[४७] दे, गयो नारि के पास।
होय सरल कहतो भयो, भो देवी गुणरास॥ ६६४॥
आज थकी जिनधर्म को, मोकूं सेवक जांन।
जो अब ऐसे नहीं करूँ, तू मोहि निंद बखान॥ ६६५॥
मैं मिथ्याती संग तें, कियो निंद बहु काज।
वृत्त छांडि मुनि पीडए[४८], सो सब खिमि[४९] गुणराज॥ ६६६॥

(पद्धरि)

इत्यादि बचन कहि तोखी[५०] नारि, फिरि दंपति जिनमंदिर सुधारि।
करि अष्ट द्रव्य जिन पूजी राय, थुति करि दंपति मिलि वाडि आय॥ ६६७॥
वरदत मुनि दंपति देखि सोय, दोऊ सिर नायो भक्ति जोय।
मुनि कूं पूछ्यो कर जोरि राय, प्रभु मो संसै मेटो सुभाय॥ ६६८॥

---

४३. पत्नी, ४४. विरक्त, ४५. पति का, ४६. धारण करूँगी, ४७. शीघ्र, ४८. पीड़ित किया, ४९. क्षमा करो, ५०. संतुष्ट किया

मैं पापी मिथ्याद्रष्टि जीव, तिन सँगतें वृत छांडे सदीव।
मुनि निंदे नाथ कुमार्ग जोय, इत्यादिक कीन्हों पाप सोय॥ ६६९॥
भो मुनि ये जा विधि[५१] पाप जाय, उत्तम गति पूरव मोहि थाय।
ऐसो दंड मोकूँ देहि नाथ, तातें अघ छाँडे मोहि साथ॥ ६७०॥
मुनि कही दया उर आनि भूप, सिधचक्र वृत्त बिधि करो अनूप।
तब भूप कही बृत विधि बताय, ता बिध तें मो सब पाप जाय॥ ६७१॥

(चौपई)

पूजा बास[५२] किसी बिध होय, भाषे मुनि भूपति सुणी सोय।
कार्तिक फागुण मास असाढ, सुदि आठे पून्यू[५३] तक सार॥ ६७२॥
देव धर्म गुरु पूजा करे, हरष सहित बसु[५४] द्रव्य जु धरे।
जंत्र[५५] फेरि पूजै मन लाय, अष्ट द्रव्य तें पूज कराय॥ ६७३॥
जाप करै इक सत वसु[५६] जान, 'अ सि आ उ सा' यह अक आन।
मंत्र जपो एकागर[५७] होय, महाभक्ति हिरदे[५८] में जोय॥ ६७४॥
नंदीस्वर को मंडल करे, पंच बरण[५९] के अक्षत धरे।
आठ दिवस पून्यूं परजंत,[६०] पूजे अष्ट द्रव्य करि संत॥ ६७५॥
रात जागरण करे मन लाय, धर्म ध्यान तें काल बिताय।
ब्रह्मचर्य बसु[६१] दिन लग[६२] रहें, घर आरंभ कछु नहीं चहै॥ ६७६॥
सचित्त वस्तु खावे नहीं कोय, अब सुनि वृत्त तणी बिध[६३] जोय।
आठ उपास थकी व्रत करै, सो तो उतकिष्टी विध[६४] धरे॥ ६७७॥
कै[६५] करिहै बेले[६६] अनपान, यह विधि एक कही सुनि आन।
बास येकात्र[६७] करे जन कोय, यह भी विध[६८] भाषी मुनि जोय॥ ६७८॥
जो अति हीन भक्ति करि होय, या बिध[६९] ब्रत्त करो जन सोय।
आठै[७०] चवदस[७१] बास कराय, षट[७२] इकठांणां[७३] करे सुभाय॥ ६७९॥

---

५१. जिस प्रकार से, ५२. उपवास, ५३. शुक्ल पक्ष की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक, ५४. अष्ट, ५५. यन्त्र, ५६. एक सौ आठ, ५७. एकाग्र, ५८. हृदय, ५९. वर्ण, रंग, ६०. पूर्णिमा तक, ६१. आठ, ६२. तक, ६३. विधि, ६४. उत्कृष्ट विधि, ६५. अथवा, ६६. वेला, दो दिन का उपवास, ६७. एकासन, ६८. विधि, ६९. इस प्रकार, ७०. अष्टमी, ७१. चतुर्दशी, ७२. छः, ७३. एकाशन

यह बिधि तो ऐसे करि कही, और सुनूं दूजी बिधि सही।
आठूं[७४] तो उपवास कराय, नोमी[७५] इक आठम[७६] ही खाय ॥ ६८० ॥
दसमी भांत पान ही लेय, ग्यारस[७७] अल्प अहार करेय।
बारसि[७८] एकाठम[७९] ही खान, तेरस भात पान ले मान ॥ ६८१ ॥
चवदस[८०] पून्नू[८१] बेलो[८२] करे, या विध व्रत्त करे अघ[८३] हरै।
यह दोऊ बिध ही सुभ जांन[८४], वृत्त करे समता मन आन ॥ ६८२ ॥
एकै[८५] दिन बहु करे उछाह[८६], पूजे सीधचक्र उर चाह।
फिर सुभ दान मुनि कूं देय, दूखित की करणा चित लेय ॥ ६८३ ॥
मुनि कूं महाभक्ति करि देय, दूखित दीन तोषि पुनि जेय।
पीछे आप पारणा करे, यह व्रत तीन भांति अनुसरै ॥ ६८४ ॥
उतकिष्टो[८७] द्वादस वर्ष धरे, जघन्य वरस त्रय लूं[८८] अनुसरे।
मध्य बर्त[८९] वसु वर्ष लू[९०] जांनि, या बिधि व्रत संपूर्ण ठांनि ॥ ६८५ ॥
फेरि उद्यापन की बिधि करै, जिन का धाम[९१] करावे खरे।
श्रुत[९२] लिखावे भक्ति उपाय, फिर जिन गेह उपकर्ण[९३] चढ़ाय ॥ ६८६ ॥
सिद्ध भक्ति ठाने हित काज, प्रभावन धर्म को करि राज।
दुखित दीन पोषे के सही, अभय घोषणा द्यावे मही ॥*
या विधि ब्रत को करे उछाह[९४], सो अघ नास करे धरि चाव।
जो नहिं सक्ति उद्यापन तणी, दूणूं[९५] व्रत्त करे बुध धणी ॥ ६८७ ॥

(दोहा)

बरदत मुनि या विधि कही, सुण श्रीकंत नरेस।
नारि सहित व्रत धारि के, मुनि कूं नयो महेस ॥ ६८८ ॥

---

७४. अष्टमी को, ७५. नवमी, ७६. एकाशन, ७७. एकादशी को, ७८. द्वादशी को, ७९. एकाशन, ८०. चतुर्दशी को, ८१. पूर्णिमा को, ८२. बेला, दो दिन का उपवास, ८३. पाप, ८४. दोनों ही विधियों को शुभ समझो, ८५. एक, ८६. उत्सव, ८७. उत्कृष्ट, ८८. तीन वर्ष तक, ८९. मध्यम व्रत, ९०. आठ वर्ष तक, ९१. जिन मन्दिर, ९२. शास्त्र, ९३. उपकरण, ९४. उत्सव, ९५. दुगुणा

*मूल प्रति में ही इस पर कोई क्रमसंख्या नहीं मिलती।

फिर निज मंदिर आयके, भाव सहित विध लाय।
उद्यापन जुत व्रत कियो, धर्म उद्योत[६६] कराय॥ ६८६॥
केते दिन सुख राज करि, फिरि कारण को पाय।
भये मुनि संन्यास कर, सुख तें छाँडी काय॥ ६६०॥
आराधना अराधि के, सुमरि पंच भवतार[६७]।
सुर्ग सतार[६८] विषै भये, इंद्र महारिध धारि[६६]॥ ६६१॥
श्रीमती फिरि अर्जिका, महातपस्या ठांनि।
इन्द्राणी उस इंद्र के, भई महासुख खांनि॥ ६६२॥
ये दोऊ सुख भोगते, तिष्टत हे सुरथान।
तहँ या बिधि पुन्य संग्रहे, इंद्र नारि जुत जांनि॥ ६६३॥
स्वर्ग विषै जिन थान में, कबहूं पुन्य उपाय।
कबहूं नंदीस्वर विषै, पूजत जिन थल जाय॥ ६६४॥

(अडिल्ल)

तीर्थंकर के पंचकल्याणक सोय है।
और जती के दोय ज्ञान सिव होय है।
ते पूजे मन लाय सुने जिनबानी जू।
मंत्र जपे नवकार महासुख खान जू॥ ६६५॥
इत्यादिक स्वर जोग्य जते[७००] सुभ काज हैं।
सो करि पुन्य उपाय नहीं वृत साजहै[१]।
अष्टादस दधि आय[२] अवधि चव नर्क लूं[३]।
एती विक्रिय जांनि नहीं कछु तर्क लूं॥ ६६६॥

(चौपई)

साढा तीन हाथ की काय, सैस अठारै[४] वर्ष सु जाय।
होय अहार मानसी तबै, सास उसास मास नौ तवै॥ ६६७॥

---

६६. प्रभावना, ६७. पञ्च परमेष्ठी, ६८. सतार नामक पन्द्रहवाँ स्वर्ग, ६६. महाऋद्धि धारक, ७००. देवों के योग्य जितने भी, १. उन्हें करके पुण्य उपार्जित करते हैं पर व्रत धारण नहीं कर सकते, २. अठारह सागर की आयु, ३. चौथे नरक तक अवधिज्ञान, ४. अठारह हजार

(सोरठा)

तन बहु होय सुगन्ध, सप्त धात मल मुत्त नहिं।
रोग सोग नहीं फंद, अति सुंदर तन तिन तणूं[५] ॥ ६९८ ॥
निज मंदिर मैं जानि, मेरादिक[६] परबत विषें।
दीप असंख्या थानि, दंपति कीडा कूं भमें ॥ ६९९ ॥
स्वरछा तीहा होय, दीप समुद्र सुरंग में।
केलि[७] करत खुशि होय, बहु स्वर[८] सेवे चरन कूं ॥ ७०० ॥
बहुत सुरंगना[९] आय, नृत करे गावे मधुर।
जोवत सुख अधिकाय, या विधि सुख सब आय लूं[१०] ॥ ७०१ ॥
अष्टादस दधि आय, भोगि महासुख तुम चये।
कोड़ीभड़ तुम थाय, अब नहीं तन धरनूं रह्यो ॥ ७०२ ॥

(चौपई)

फिरि वह इंद्राणी चय आय, को भव ले[११] नाना सुख पाय।
दोष निदान थकी यह आनि, मैणां सुदरि उपजी जान ॥ ७०३ ॥
आगे पूरब भव[१२] में सही, यातें धर्म लाभ तैं लही।
या भव[१३] में भी या परभाय[१४], कोढ गयो सब निधन विलाय ॥ ७०४ ॥
या भव में याके परसादि[१५], पायो धर्म किये अघ वादि।
यातें सुंदरी तें अति नेह, सारी बिधि नृप जान्यो येह ॥ ७०५ ॥
कहे मुनी सुनि ओ श्रीपाल, सिद्धचक्र पूजा गुणमाल।
ता फल चरम सरीरी राय, उपज्यो कर्म हरन कूं आय ॥ ७०६ ॥
ऐसी जानि भविक जे होय, सो अपने हित वांछी कोय।
सीध चक्र पूजा बिधि करो, ता फल कर्म विघन सब हरो ॥ ७०७ ॥
सब परसन[१६] को उत्तर पाय, फिरि सब अपनू भो[१७] सुनि राय।
सीध तणी लछी[१८] लीणे भूप, फिरि ब्रत्त लीनूं सुखरूप ॥ ७०८ ॥

---

५. उनका, ६. सुमेरु आदि, ७. क्रीड़ा, ८. देव, ९. देवाङ्गनाएँ, १०. पूरी आयु तक, ११. कुछ जन्म लेकर, १२. पूर्व जन्म में, १३. इस जन्म में, १४. प्रभाव से, १५. प्रसाद से, कृपा से, १६. प्रश्न, १७. भव, जन्म, १८. लक्ष्मी

आठ हजार नारि सब जांनि, सब राणिन की सखी सु आंनि।
बृत्त लियो सिध चक्र महान, ता फल अघ तजि ले सिव थांन ॥ ७०६ ॥
और भूप बहुतो बृत लीयो, पुरजन नर नारी ब्रत ठ्यो।
नाम अचित्र बिचित्र सु दोय, श्रीपाल के साले सोय ॥ ७१० ॥
जानि सुकंठ श्रीकंठ सु दोय, इत्यादिक बहु राजा सोय।
प्रजापाल सुंदरी तात[१६], सुभट सात सै सब मिलि आत ॥ ७११ ॥
दे प्रदक्षणा[२०] मुनि कूं नये[२१], अष्टानिक ब्रत लेते भये।
फिरि श्रीपाल सर्व जुत जाय, मुनि कूं नये अपने घर आय ॥ ७१२ ॥
आप व्रत्त कीनूं[२२] बिध लाय[२३], औरन पै बिधि जुत करवाय।
कियो उद्यापन सहित उछाह[२४], सीध थांन फलकूं अति चाव ॥ ७१३ ॥
जिन मंदिर करवाये सही, त्वंग[२५] सिखर ऊजल धज[२६] ठही।
तोरण रतनमई तहां जांन, इत्यादिक परभावन[२७] ठांन ॥ ७१४ ॥
अपनी नारि सकल अन्य भूप, तिन जिन गेह[२८] किये सुखरूप।
बहु जिन मंदिर तिनके मांहि, रतनमई प्रतिमा पधराहि ॥ ७१५ ॥
सुभ थानक द्रव्य[२९] लागतो जांन, माल लगायो अति हित मांन।
करी प्रतिष्टा बहु द्रव्य लाय, बहुत प्रभावन धर्म को थाय ॥ ७१६ ॥
सीध क्षेत्र की पूजा काज, जहां तहां तिष्टत मुनिराज।
संघ सहित सब सुभ थल जोय, करी जात्रा[३०] हरषत होय ॥ ७१७ ॥
फिरि नित मंदिर अपने सही, कै जिन के चैतालय सही।
पूजा आप करे मन लाय, औरन पै पूजा करवाय ॥ ७१८ ॥
औरन कूं दे सुभ उपदेस, रूप अनेक वाणि जिन भेस।
आप सुणे अन कूं[३१] सुणवाय, तीन काल सामयिक कराय ॥ ७१९ ॥
मन बच सुद्ध काय कर सही, आठे चौदसी[३२] पौसो[३३] ठही।
सोल पहर[३४] उपास जु करै, घर आरंभ सब ही परहरै ॥ ७२० ॥
सम्यक् जुत अणुब्रत्त धराय, पाले सुध नहीं दोष लगाय।
इत्यादिक सुभ रीति सु ठांनि, बहुजन धर्म लगाये जांन ॥ ७२१ ॥

---

१६. पिता, २०. प्रदक्षिणा, २१. नमस्कार किया, २२. किया, २३. विधिपूर्वक, २४. उत्सव, २५. ऊँचा, २६. उज्जवल ध्वजा, २७. प्रभावना, २८. जिनमन्दिर, २९. धन, ३०. यात्रा, ३१. दूसरों को भी, ३२. अष्टमी चतुर्दशी को, ३३. प्रोषधोपवास, ३४. सोलह प्रहर

तातें सर्व लोक मिलि कही, धर्मराज संज्ञा इम दही।
श्रीपाल घर धर्मप्रभाय, आप करे अनपै[३५] करवाय॥ ७२२॥
धर्म सदा उर मांहि बिचार, दे उपदेस दया चित धार।
पाप थकी न्यारो चित कियो, धर्म तणूं फल अद्भुत लियो॥ ७२३॥
पुन्य थकी लछि पायी सोय, ताको कथन अलप सो जोय।
बारह सहस तुरंग[३६] सुभ जानि, सो तो निज पायक के मांनि॥ ७२४॥
सीघरगामी[३७] और सुरंग, द्वादस लाख भरे सुभ अंग।
बारह सहस उष्ट्र[३८] पहचान, खच्चर द्वादस सहस बखान॥ ७२५॥
बारह कोडि पयादे जोय, नारी पूरव भाषी[३९] सोय।
बारह सहस एक सो आठ, एते सुत सब ही गुणठाठ॥ ७२६॥
सीलवान रूपी[४०] सब जोय, धन को कथन करे सो कोय।
धन कंचन रतनादिक जांनि, ताकी संख्या पुनही मांन॥ ७२७॥
या विध सुख तें बहु दिन गये, इक दिन इम कारन लखि लिये।
कीच फँस्यो हस्ती वृध जोय[४१], मुवो गैंद[४२] लखि विरकत होय॥ ७२८॥
चित वैरागि भूप इम भाय, ज्यौं हस्ती मरि कीच फँसाय।
ज्यौं सठ[४३] प्राणी भव सुख पंक, तामें डूबत है होय रंक॥ ७२९॥
नारी रूप कीच मैं आय, मद पानी ज्यौं पड़ि सुख पाय।
होय बिमुख धर्म तें सही, सब जम मिंदर[४४] पहुँचे कही॥ ७३०॥
इन सब जीवन को अरिकाल, महाप्रचंड दुख नरक की माल।
हरहरादि याके बस भये, इन तें एक मुनी बच थये॥ ७३१॥
इंद्री मन तब लूं बल रहैं, जेते तप संजम करि कहैं।
रतनत्रये बरछी कर[४५] पाय, मारो काल अरी[४६] दुखदाय॥ ७३२॥
इम चीती[४७] श्रीपाल नृप सोय, भोग जगत तें बिरकत होय।
जम अरि हरने[४८] उद्यम कियो, महीपाल सुत कूं पद दियो॥ ७३३॥

---

३५. दूसरों से, ३६. घोड़े, ३७. शीघ्रगामी, ३८. ऊँट, ३९. पूर्वोक्त, ४०. सुन्दर, ४१. कीचड़ में फंसे हुए वृद्ध हाथी को देखकर, ४२. गयन्द, गजेन्द्र, हाथी, ४३. मूर्ख, ४४. यमराज के घर, ४५. हाथ, ४६. काल शत्रु, ४७. ऐसा विचार किया, ४८. यमराज रूपी शत्रु को जीतने के लिए

सुवरतां आचारय पासि[४६], जाय नयूं मस्तक गुणरासि।
उनकूं निज गुर[५०] हिरदै लाय, बहु राजन जुत मुनिवर थाय॥ ७३४॥
अंतर बाहि परीग्रह छोर, भये जती[५१] मोह को मद मोरि।
मैंणां सुंदरी आदिक त्रीय[५२], सब मिलि अर्जिका वृत लीय॥ ७३५॥
अब सब मुनी अर्जका सोय, महा तपस्या करते होय।
आतम ध्यान सूत्र जिनपाठ, सहे परीस्या[५३] को बहु ठाठ॥ ७३६॥
इंद्री सुभट विषैं मद मोर, पर जीवन के फिर अघतोर।
सुभ चारित्र पालते सही, गुफा मसाणी तिष्टत मही॥ ७३७॥
कर्म सिथल[५४] करते फिरवाय, या बिध तें बहु काल बिताय।
फिर मुनि श्रीपाल संघ छोरि, एकाकी तिष्टे अघ मोर॥ ७३८॥

(दोहा)

सुकल ध्यान असि[५५] ले मुनी, चले खिंपक[५६] दिसि होय।
घाति कर्म आगु चले, सिवनारी मुख जोय॥ ७३९॥
लोकालोक प्रकासिकर, पायो केवलज्ञान।
तव स्वर[५७] खग[५८] कल्याण सुभ, कियो ज्ञान को आनि॥ ७४०॥
यथायोग्य करते भये, समोसरण विध देव।
ता मध्य आप विराजये, करत जगत त्रय सेव॥ ७४१॥

(पद्धरि)

तब अनत चतुष्टय पाय देव, त्रय लोक ज्ञान जाने स्वमेव।
फिर कियो जिनंद बिहार सोय, बहु देसन के जीव बोध जोय॥ ७४२॥
भवि[५९] पड़त जगत-दधि[६०] मांहि जांन, काढे जिनंद दे आप बाण।
फिर कर्म अघाती घाति[६१] देव, सो सीध निरंजन भये सुमेव॥ ७४३॥

---

४९. सुव्रताचार्य के पास जाकर नमस्कार किया, ५०. गुरु, ५१. मुनि, ५२. स्त्रियाँ, ५३. परिषह, ५४. शिथिल, ५५. शुक्ल ध्यान रूपी तलवार, ५६. क्षपक श्रेणी, ५७. देव, ५८. विद्याधर, ५९. भव्य जीव, ६०. संसार-समुद्र, ६१. अघाति कर्म को नष्ट करके

(अडिल्ल)

अष्टगुणादिक और अनभ गुण लहै,
बाधा बिन आत्मिक अनोपम[६२] सुख थहै।
बृधी[६३] हानि सुख नांहि सदा इक रूप है,
इंद्री रहित[६४] अनंत जहाँ सुख कूप है॥ ७४४॥

(दोहा)

और मुनि को शिव गये, भये देव को जाय।
प्रथम सुर्ग कूं आदि दे, सरवारथ लूँ थाय॥ ७४५॥
मैणा सुन्दरि अर्जिका, तजी समाधि ले काय।
छेदि नारि के लिंग कूं, सुक्र[६५] स्वर्ग हरि[६६] थाय॥ ७४६॥
तीन ज्ञान राजत सदा, महा रिद्ध जुत थान।
आयु पर्यंत सुख भोगि के, चय नर ह्वै सिव जान॥ ७४७॥

(चौपई)

और अर्जिका थी बहु सोय, जे सब स्वर्गथान में जोय।
कोऊ छेदि लिंग स्वर[६७] जान, देवी कूं या उपजी आन[६८]॥ ७४८॥
प्रथम स्वर्ग षोडश लूँ सही, देवी देव अर्जिका भई।
या विधि श्रीपाल नर राय, धर्म प्रभाव थकी सुख पाय॥ ७४९॥
सुर नर गति सुख भोगि अपार, फेरि सकल सुख कीने छारि[६९]।
सुर नर खग पूजित पद होय, सिद्ध सथान पहूँचे सोय॥ ७५०॥

(सोरठा)

इसो जानि हित मान, भानि[७०] प्रमाद दसा सही।
अष्टानिक विधि जानि, शक्ति समा करनो सही॥ ७५१॥

---

६२. अनुपम, ६३. वृद्धि, ६४. इन्द्रियरहित, अतीन्द्रिय, ६५. शुक्र नाम के, ६६. इन्द्र, ६७. देव, ६८. आकर, ६९. समाप्त किये, ७०. छोड़कर

जो समदृष्टी[७१] होय, नंदीश्वर व्रत कूं करै।
सो सुर नर खग[७२] होय, शिवथानक सुख कूं लहै॥ ७५२॥

(दोहा)

यह चरित्र श्रीपाल को, पूरन भयो सुजान।
याकूँ लखि धर्म उर विषै, निश दिन राखि सयान॥ ७५३॥
धर्म सकल सुखदाय है, तातें भवि उर आन।
पाप बुद्धि दुखदां सही, छांड़न की बुद्धि ठान॥ ७५४॥

(चौपई)

संवत अष्टादश शत जान, ऊपर बीस दोय फिर आन।
फागुण सुदि इग्यार निस मांहि, कियो समापत उर हुलसाहि॥ ७५५॥

(दोहा)

सोमसेन अनुसार ले, दौलतराम सुखदाय।
यह भाषा पूरण करी, सकल संघ सुखदाय॥ ७५६॥

[इति श्रीपालचरित्र संपूर्ण। गुरुजी धूलजी गुलाबचंद लिखतं प्रतापगढ़ मध्ये गोपालगंज में पोसाल वेकमलागछे सरावक नरसीगपुरा हीराचंदजी वाचवा अर्थे लिखितं।
संवत् १९१२ फागुन मासे शुक्लपक्षे तिथि २ शनिवारे।]

---

७१. सम्यग्दृष्टि, ७२. विद्याधर

नाम-परिचय

[कथा को पढ़ते समय कभी-कभी कोई नाम उलझन पैदा कर देता है; क्योंकि हम उसका परिचय नहीं जानते, अथवा पूर्व-पठित होने पर भी हम उसे भूल गये होते हैं; अतः यहाँ कथा में समागत व्यक्ति एवं स्थानवाची नामों का वर्णानुक्रम से संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। परिचय देते समय पुरुषवाची एवं स्त्रीवाची नामों को भी अलग-अलग रखने का यत्न किया है। नाम के आगे कोष्ठक में उस एक छन्द का क्रमांक दिया है जिसमें वह नाम प्रयुक्त है।]

—सम्पादक

(क) व्यक्तिवाची नाम—

पुरुष-नाम

१. अचित्र (७१०) — चित्र का अपर नाम। राजा विद्युतप्रभ और रानी मेघमालिनी का पुत्र। मदनमंजूषा का भाई।

२. अभयकुँवर (००७) — राजा श्रेणिक और रानी चेलना का पुत्र।

३. अमरसुन्दर (४३३) — कुण्डलपुर के राजा अमरकेतु और रानी कपूरतिलक का पुत्र।

४. अरिजीत (४५६) — कूँकणद्वीप के राजा विजय का पुत्र।

५. अरिमरदन (५१९) — अहिच्छत्रपुर का राजा, जिसकी पाँच सौ कन्याओं से श्रीपाल ने विवाह किया।

६. कृष्णपुत्र (४५६) — कूँकणद्वीप के राजा विजय का पाँचवाँ पुत्र।

७. कोडीभट (१३३) — श्रीपाल का विख्यात नाम।

८. गौतम (०१९) — तीर्थंकर वर्धमान के प्रमुख गणधर।

९. चित्र (२४८) — अचित्र का अपर नाम। राजा विद्युतप्रभ और रानी मेघमालिनी का पुत्र। मदनमंजूषा का भाई।

१०. जोधपुत्र (४५६) – कूँकणद्वीप के राजा विजय का तीसरा पुत्र।
११. धनपाल (३३५) – दलबरतनपुर का राजा। गुणमाला का पिता।
१२. धवल (१७१) – एक बड़ा व्यापारी सेठ जिससे श्रीपाल की भेंट भृगुकच्छप नगर में हुई।
१३. बड़सेन (४४५) – कंचन नगर का राजा। चित्रलेखा का पिता।
१४. मकरकेतु (४३२) – कुण्डलपुर का राजा।
१५. मणिभद्र (३१८) – एक यक्ष जिसने सती मदनमंजूषा के शील की रक्षा की।
१६. मनोहर (३३६) – दलबरतनपुर के राजा धनपाल और रानी वनमाला का पहला पुत्र।
१७. महीपाल (७३३) – श्रीपाल का पुत्र जिसे राज्य सौंप कर श्रीपाल ने मुनिदीक्षा ली।
१८. यशोधर मुनि (५२२) – राजा अरिमरदन के दीक्षा-गुरु।
१९. यशोभद्र मुनि (२४६) – एक अवधिज्ञानी मुनि जिन्होंने मदनमंजूषा का वर कौन होगा, यह बताया था।
२०. वरदत्त मुनि (६६८) – श्रीपाल ने पूर्वभव में इनसे ही अपने घोर अपराध का प्रायश्चित्त लिया था।
२१. वर्धमान (००६) – तीर्थंकर महावीर का ही अपर नाम।
२२. विचित्र (२४८) – राजा विद्युतप्रभ और रानी मेघमालिनी का पुत्र, मदनमंजूषा का भाई।
२३. विजय (४५४) – कूँकणद्वीप का राजा। श्रीपाल ने इसकी सौभागगौरी आदि १६०० कन्याओं को संस्कृत-समस्यापूर्ति में जीता था और फिर उनके साथ विवाह किया।
२४. विद्युतप्रभ (२४७) – रथनूपुर और बलवक्र नगर का विद्याधर राजा।
२५. वीरदमन (५७८) – श्रीपाल के पिता राजा सिद्धार्थ का छोटा भाई जिसने उनका राज्य छीन लिया था। बाद में श्रीपाल ने उनसे पुनः राज्य प्राप्त कर लिया। इन्होंने मुनिदीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया।
२६. वैरदमन (५२२) – अहिच्छत्रपुर के राजा का छोटा भाई जो बाद में स्वयं भी राजा हो गया। सुरसुन्दरी का पति। मैनासुन्दरी का बहनोई।
२७. शिवशर्म (०२७) – एक द्विज। राजा प्रजापाल की बड़ी पुत्री की

शिक्षा इसी के पास हुई।

२८. श्रीकण्ठ (३३६) – दलबरतनपुर के राजा धनपाल का पुत्र। गुणमाला का भाई।

२९. श्रीकान्त (६३२) – श्रीपाल का पूर्वभव का नाम। रत्नसंचयपुर का विद्याधर।

३०. श्रीकान्त मुनि (६५७) – श्रीपाल ने पूर्वभव में इनकी निन्दा की थी और इन पर उपसर्ग भी किया था जिसके फलस्वरूप उन्हें इस भव में कोढ़ आदि के दुःख उठाने पड़े।

३१. श्रीपाल (०४४) – कथा का नायक। चंपापुरी के राजा सिद्धार्थ और रानी कमलप्रभा का पुत्र, मैनासुन्दरी का पति।

३२. श्रुतसागर (६१६) – एक मुनिवर जिन्होंने श्रीपाल को उसके पूर्वभव की कहानी बताई।

३३. श्रेणिक (००६) – राजगृह का राजा जिसने तीर्थंकर महावीर के समवसरण में सिद्धचक्र कथा सुनाने का अनुरोध किया।

३४. सनेह (४५६) – कूँकणद्वीप के राजा विजय का दूसरा पुत्र।

३५. सागराचार्य (६०७) – राजा वीरदमन के दीक्षागुरु।

३६. सिद्धार्थ (१२४) – अंग देश के चम्पापुर नगर के राजा। श्रीपाल के पिता।

३७. सुकण्ठ (३३६) – दलबरतनपुर के राजा धनपाल का पुत्र। गुणमाला का भाई।

३८. सुव्रताचार्य (७३४) – श्रीपाल के दीक्षागुरु।

३९. हिरणपुत्र (४५६) – कूँकणद्वीप के राजा विजय का पहला पुत्र।

स्त्री-नाम :

१. कंचनमाला (४४५) – कंचननगर के राजा बड़सेन की रानी।

२. कमलप्रभा (१२४) – श्रीपाल की माता। चम्पापुरी के राजा सिद्धार्थ की पत्नी।

३. कपूरतिलक (४३२) – कुण्डलपुर के राजा मकरकेतु की रानी।

४. गुणमाला (३३७) – दलबरतनपुर के राजा धनपाल की पुत्री।

५. चक्रेश्वरी (३१६) – एक देवी जिसने महासती मदनमंजूषा के शील की रक्षा की।

६. चित्ररेखा-I (४३३) – कुण्डलपुर के राजा मकरकेतु की बड़ी पुत्री।
७. चित्ररेखा-II (४६०) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की आठवीं पुत्री।
८. चित्रलेखा (४५०) – कंचननगर के राजा बड़सेन की पुत्री।
९. चेलना (००७) – राजगृह के राजा श्रेणिक की पत्नी।
१०. ज्वालामालिनी (३२०) – एक देवी जिसने मदनमंजूषा के शील की रक्षा की।
११. पद्मावती-I (३२०) – एक देवी जिसने मदनमंजूषा के शील की रक्षा की।
१२. पद्मावती-II (४६०) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की सातवीं पुत्री।
१३. पोलमी (४५९) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की तीसरी पुत्री।
१४. बीसलमती (४४६) – कंचन नगर के राजा बड़सेन की पुत्री।
१५. मदनमंजूषा (२४८) – रथनूपुर के राजा विद्युतप्रभ की पुत्री।
१६. मेघमालिनी (२४८) – रथनूपुर के राजा विद्युतप्रभ की पत्नी।
१७. मैनासुन्दरी (०२५) – कथा की नायिका। श्रीपाल की पत्नी। उज्जयिनी के राजा प्रजापाल की छोटी पुत्री।
१८. यशोमाला (४५५) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की पटरानी।
१९. रैनादेवी (४५९) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की चौथी पुत्री।
२०. रोहिणी (३१९) – एक देवी जिसने मदनमंजूषा की शील की रक्षा की।
२१. वनमाला (३३५) – दलबरतनपुर के राजा धनपाल की पत्नी।
२२. श्रीमती (६३२) – रत्नसंचयपुर के श्रीकांत विद्याधर की पत्नी, मैनासुन्दरी का पूर्वभव
२३. शृंगारगौरी (४५९) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की दूसरी पुत्री।
२४. सम्पदा (४६०) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की छठी पुत्री।
२५. सुरसुन्दरी (०२५) – उज्जयिनी के राजा प्रजापाल की पुत्री। मैनासुन्दरी की बहिन।
२६. सोमा (४६०) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की पाँचवीं पुत्री।
२७. सौभागगौरी (४५९) – कूँकणद्वीप के राजा विजय की प्रथम पुत्री।
२८. सौभाग्यसुन्दरी (०२५) – उज्जयिनी के राजा प्रजापाल की पत्नी। मैनासुन्दरी की माता।

(ख) स्थानवाची नाम :

१. अंग (१२४) – उस देश का नाम जिसमें श्रीपाल की राजधानी

चम्पापुरी स्थित है।

२. अहिच्छत्रपुर (५१६) – पहले राजा अरिमरदन की और बाद में उसके छोटे भाई वैरदमन की राजधानी।

३. उज्जयिनी (०२४) – राजा प्रजापाल की राजधानी, मैनासुन्दरी का पीहर।

४. कंचननगर (४४५) – राजा बड़सेन की राजधानी।

५. कुण्डलपुर (४३२) – राजा मकरकेतु की राजधानी।

६. कूँकणद्वीप (४५४) – राजा विजय की राजधानी।

७. गिरिनार (५१३) – सौराष्ट्र देश में स्थित प्रसिद्ध तीर्थ पर्वत जहाँ श्रीपाल ने रुक कर अष्टाह्निका व्रत किये।

८. गुजरात (५२५) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक प्रदेश।

९. चम्पापुरी (४२४) – श्रीपाल की जन्मभूमि, असली राजधानी।

१०. जम्बूद्वीप (००६) – मध्यलोक में स्थित एक प्रमुख द्वीप।

११. तिलंग (५०२) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक नगर।

१२. दलबरतनपुर (५०७) – तिलंग देश का एक नगर, जहां राजा धनपाल राज्य करता था। मदनमंजूषा का पीहर।

१३. बलवक्र (२४७) – वैताढ्यगिरि की दक्षिण दिशा में स्थित एक नगर, जहाँ विद्युतप्रभ विद्याधर रहता था।

१४. बालपुर (५००) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक नगर, जहाँ उन्होंने ७०० कन्याओं के साथ विवाह किया था।

१५. भरत (००६) – जम्बूद्वीप के आर्यखण्ड का एक प्रमुख क्षेत्र।

१६. भृगुकच्छप (१७१) – एक नगर, जहाँ श्रीपाल और धवलसेठ की पहली भेंट हुई थी।

१७. मगध (००६) – वर्तमान बिहार राज्य का एक विशेष क्षेत्र, जिसमें राजा श्रेणिक की राजधानी राजगृह थी।

१८. मरहठ (५२४) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक विशेष देश, जहाँ उन्होंने ५०० कन्याओं के साथ विवाह किया था।

१९. मालव (०२१) – एक विशेष देश, जिसमें उज्जयिनी नगर स्थित है।

२०. मेदपाट (५२६) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक विशेष देश, जहाँ उन्होंने २०० कन्याओं के साथ विवाह

किया था।

२१. रत्नद्वीप (२२२) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक द्वीप, जहाँ उन्होंने सहस्रकूट चैत्यालय के द्वार खोले थे।

२२. रत्नसंचयपुर (६३२) – भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर स्थित एक नगर, जहाँ श्रीपाल पूर्व में श्रीकांत नामक विद्याधर थे।

२३. रथनूपुर (२४७) – वैताढ्यगिरि की दक्षिण दिशा में स्थित एक नगर, जहाँ विद्युतप्रभ विद्याधर राज्य करता था।

२४. राजगृह (००६) – राजा श्रेणिक की राजधानी।

२५. विजयार्ध (६३१) – एक पर्वत, जहाँ के रत्नसंचयपुर में श्रीपाल पूर्व जन्म में श्रीकांत राजा थे।

२६. वैताढ्य (२४६) – एक विशेष पर्वत, जिसकी दक्षिण दिशा के दो नगरों पर विद्युतप्रभ विद्याधर राज्य करता था।

२७. सोरठ (५१३) – श्रीपाल के यात्रामार्ग में पड़ने वाला एक नगर, जहाँ के गिरिनार पर्वत पर उन्होंने अष्टाह्निका व्रत किये।

❑



भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003

संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन

ISBN 81-263-0913-X

मूल्य : 40 रुपये